# भारतीय संविधान और प्रशासन

कक्षा 11 के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक

# भारतीय संविधान और प्रशासन

(कक्षा XI के लिए राजनीति विज्ञान की पाठ्यपुस्तक)

लेखक
वी. एल. गर्ग

संपादक
नलिनी पंत

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
सितम्बर 2002
भाद्रपद 1924
PD 35T ML

ISBN 81-7450-090-1

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2002

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक कि बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रारूप से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

| | | | |
|---|---|---|---|
| एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस<br>श्री अरविंद मार्ग<br>नई दिल्ली 110 016 | 108, 100 फीट रोड, हेलेनेरे<br>हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज<br>बैंगलूर-560 085 | नवजीवन ट्रस्ट भवन<br>डाकघर, नवजीवन<br>अहमदाबाद 380 014 | सी.डब्लू.सी. कैम्पस<br>32, बी.टी. रोड, कुउघर<br>24 परगना 743 178 |

प्रकाशन सहयोग

संपादन : एम. लाल
उत्पादन : प्रमोद रावत
राजेन्द्र चौहान
आवरण : अमित श्रीवास्तव

एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित ।

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा सरस्वती आर्फसेट प्रिन्टर्स, ए-5, नारायणा इन्डस्ट्रीयल एरिया, फेस-II, नई दिल्ली-110028 द्वारा मुद्रित।

# प्राक्कथन

राजनीति विज्ञान उच्चतर माध्यमिक स्तर पर एक ऐच्छिक विषय है। विद्यालयी शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर नागरिक शास्त्र का अध्ययन सामाजिक विज्ञान के घटक के रूप में किया जाता है तथा इसकी विषयवस्तु का पठन-पाठन राजनीति विज्ञान के वैषयिक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि सामान्य ढंग से होता है। विद्यालयी शिक्षा के पहले दस वर्षों में विद्यार्थी नागरिक तथा राजनीतिक संस्थाओं के कार्यान्वयन और भारत तथा विश्व की समसामयिक समस्याओं का अध्ययन करते हैं। सामान्य शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप दस वर्षों में विद्यार्थियों में विभिन्न नागरिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाओं की सही समझ के विकास पर बल दिया जाता है। इन विषयवस्तुओं को माध्यमिक स्तर तक समेकित सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण घटक के रूप में समाविष्ट किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक, भारतीय संविधान एवं प्रशासन : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2000* के आधार पर राजीनीति विज्ञान के नवीन पाठ्यक्रम पर आधारित है। इस नए पाठ्यक्रम के अधिगम के अनुरूप विद्यार्थियों को इस पुस्तक द्वारा भारतीय संविधान एवं इसकी कार्य प्रणाली तथा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के विकास के आयाम को बौद्धिक एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक की पाठ्यवस्तु विद्यार्थियों को एक गतिशील राज्य में लोक सेवाओं की भूमिका को समझने में सहायक सिद्ध होगी।

*विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा* में चर्चित कुछ केंद्रिक शिक्षा क्षेत्रों को इस पुस्तक के संबंधित अध्यायों में समाहित किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अंत में विद्यार्थियों के लिए कुछ अभ्यास के प्रश्न दिए गए हैं। साथ ही, पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने के लिए इसके अंत में पद-वाक्यों की व्याख्या भी दी गई है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पुस्तक के विद्वान लेखक एवं अनुवादक के प्रति आभारी है, जिन्होंने इसकी पांडुलिपि तैयार की। इस पांडुलिपि का विषय विशेषज्ञों तथा अनुभवी शिक्षकों के द्वारा पूरी तरह से पुनर्निरीक्षण किया गया। रा.शै.अ.प्र.प. उन विषय विशेषज्ञों तथा शिक्षकों के प्रति भी आभारी है जिनके द्वारा दिए गए सुझावों के आधार पर पांडुलिपि को अंतिम रूप दिया गया।

इस पुस्तक के किसी पहलू पर पाठकों के सुझावों एवं उनकी टिप्पणियों का हम स्वागत करेंगे।

जगमोहन सिंह राजपूत
*निदेशक*
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

*अगस्त 2002*
नई दिल्ली

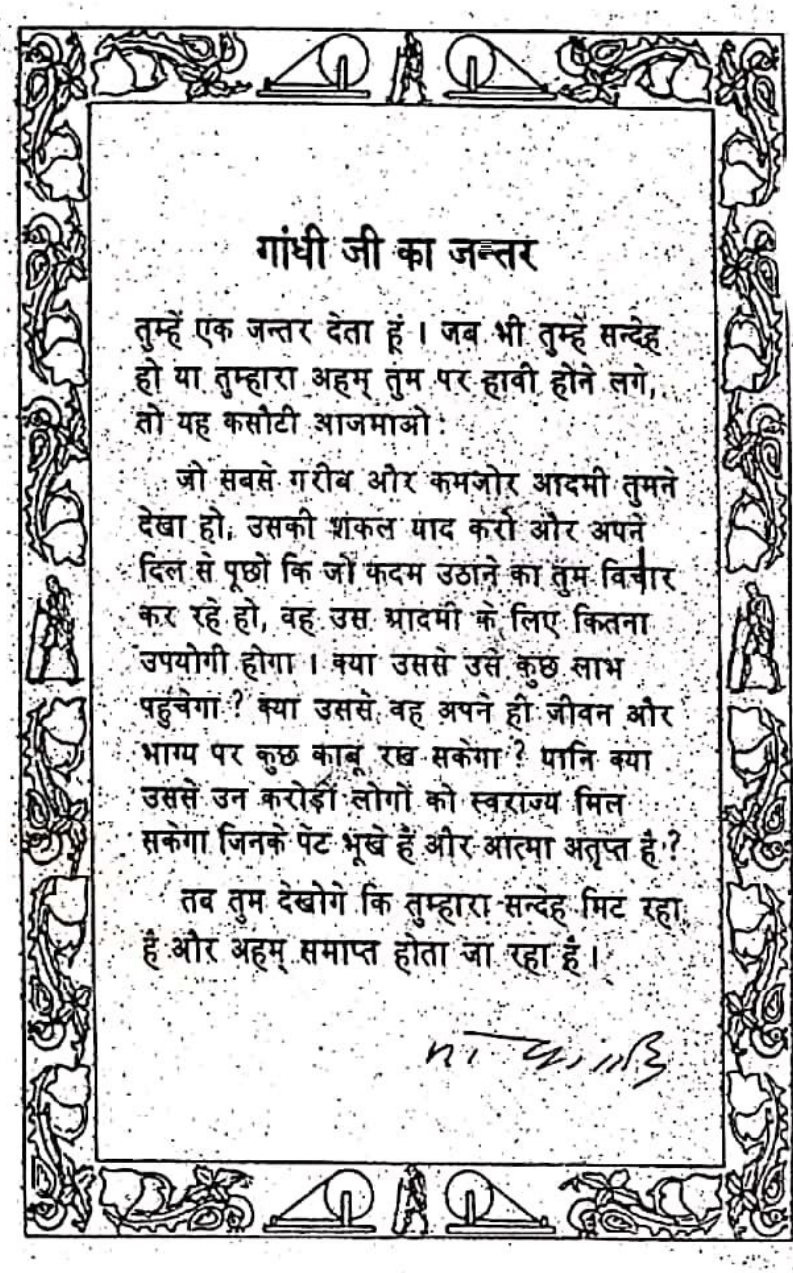

## गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

एम. के. गांधी

# पाठ्यपुस्तक समीक्षा समिति

1. बी. एल गर्ग (लेखक एवं अनुवादक)
   *अवकाश प्राप्त प्रोफेसर*, राजनीति विज्ञान
   बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
2. नलिनी पंत
   *अवकाश प्राप्त प्रोफेसर*, राजनीति विज्ञान
   104, टैगोर टॉउन, इलाहाबाद
3. आर. के. आनंद
   *निदेशक*, पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
4. पूनम प्रसाद
   *रीडर*, राजनीति विज्ञान
   दयाल सिंह महाविद्यालय
   नई दिल्ली
5. एन. डी. अरोड़ा
   *रीडर*, राजनीति विज्ञान
   डी. ए. वी. कॉलेज
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
6. बी. पी. पांडेय
   *रीडर*, राजनीति विज्ञान
   पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान
   दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
7. पी. एस. खरे
   *अवकाश प्राप्त प्राचार्य*
   अग्रसेन इंटर कॉलेज
   इलाहाबाद (उ. प्र.)
8. एस. एम. शर्मा
   *अवकाश प्राप्त उपप्राचार्य*
   एस.बी.एस.डी.सी.सेकेंडरी स्कूल,
   लाजपत नगर, नई दिल्ली
9. आर. एस. पसरीचा
   *अवकाश प्राप्त उपप्राचार्य*
   डी. ए. वी. स्कूल, युसफ सराय, नई दिल्ली
10. वर्षा मानकू
    *पी.जी.टी.*, राजनीति विज्ञान
    कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल
    अशोक विहार, नई दिल्ली
11. मदन सहनी
    *पी.जी.टी.*, राजनीति विज्ञान
    जी.बी.एस. स्कूल, नई दिल्ली
12. बी.के. गुप्ता
    *पी.जी.टी.*, राजनीति विज्ञान
    का.एस.एस. स्कूल, दरिया गंज, दिल्ली
13. संजय दुबे
    *रीडर*, राजनीति विज्ञान
    सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
    एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली
14. सुप्ता दास (कार्यक्रम समन्वयक)
    *सिलेक्शन ग्रेड लेक्चरर*, राजनीति विज्ञान
    सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग
    एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

# भारत का संविधान

## उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक [1][संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य] बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म

और उपासना की स्वतंत्रता,

प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और [2][राष्ट्र की एकता

और अखंडता] सुनिश्चित करने वाली बंधुता

बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई0 को एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

2. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 2 द्वारा (3.1.1977 से) "राष्ट्र की एकता" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

---

## भाग 4 क

## मूल कर्तव्य

51 क. मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी, और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानवतावाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

# विषय-सूची


प्राक्कथन

1. भारतीय संवैधानिक विकास के महत्त्वपूर्ण मोड़ 1

2. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और उसकी विरासत 15

3. भारतीय संविधान : प्रस्तावना, मुख्य विशेषताएँ तथा भारतीय संघ 34
   - भारतीय संविधान की प्रस्तावना
   - भारतीय संविधान : मुख्य विशेषताएँ
   - भारतीय संघ और उसका क्रियान्वित स्वरूप

4. मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य और राज्य के नीति निदेशक तत्व 46
   - मौलिक अधिकार
   - मौलिक कर्त्तव्य
   - राज्य के नीति निदेशक तत्व

5. केंद्रीय सरकार 61
   - भारतीय संसद
   - भारतीय राष्ट्रपति
   - उपराष्ट्रपति
   - केंद्रीय मंत्रिपरिषद्
   - भारत का उच्चतम न्यायालय

6. राज्य सरकार 82
   - राज्य विधान मंडल
   - राज्यपाल
   - राज्य की मंत्रिपरिषद
   - उच्च न्यायालय

7. स्थानीय शासन संस्थाएँ 95
   - भारतीय नगरों की स्थानीय शासन संस्थाएँ
   - ग्रामों की स्थानीय शासन संस्थाएँ

8. भारतीय प्रशासन : संगठन एवं कार्य 104
केंद्रीय प्रशासन : संगठन एवं कार्य
राज्य प्रशासन : संगठन एवं कार्य
भारत में जिला प्रशासन
शब्दावली 118

अध्याय 1

# भारतीय संवैधानिक विकास के महत्त्वपूर्ण मोड़

1949 में स्वीकृत भारतीय संविधान काफी हद तक 1935 के भारतीय शासन अधिनियम द्वारा प्रभावित था, जिसे ब्रिटिश संसद द्वारा पूर्व में पारित किया गया था, अतः इसे सर्वथा नवीन नहीं कहा जा सकता। भारतीय संविधान को ठीक से समझने एवं उसकी महत्ता को पहचानने के लिए यह आवश्यक है कि हम ब्रिटिश शासन के दौरान हुए संवैधानिक विकास पर विहंगम दृष्टि डालें। संवैधानिक विकास के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्ष निम्नानुसार हैं

ब्रिटिश सत्ता की आधारशिला सन् 1600 ई. में रखी गई, जब ब्रिटिश की महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इंग्लैंड में स्थापित ईस्ट इंडिया कंपनी को एक चार्टर द्वारा भारतवर्ष के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया। प्रारंभ में यह कंपनी विशुद्ध रूप से एक व्यावसायिक संस्था थी किंतु कालांतर में राजनैतिक परिस्थितियों के कारण इसने क्षेत्रीय सत्ता हथिया ली।

### 1773 का नियामक अधिनियम

कंपनी की राजनैतिक सत्ता के विस्तार के साथ इंग्लैंड में यह अनुभव किया जा रहा था कि कंपनी के क्रियाकलापों को कुछ नियमित करना आवश्यक है, अतः 1773 का नियामक अधिनियम निर्मित किया गया जिसके अंतर्गत कलकत्ता प्रेसीडेंसी में एक ऐसी सरकार की स्थापना की गई जिसमें गवर्नर जनरल और उसकी परिषद् के चार सदस्य थे जो अपनी सत्ता का उपयोग संयुक्त रूप से करते थे। इसके साथ ही बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसी की सरकारों को कलकत्ता की सरकार के अधीन कर दिया गया तथा इसने ब्रिटिश ताज को बंगाल में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना के लिए अधिकृत किया जिसका क्षेत्राधिक बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा तक विस्तृत था।

इस अधिनियम ने गवर्नर जनरल एवं उनकी परिषद् पर कई अंकुश भी लगाए जैसे इनके द्वारा निर्मित नियम एवं विनियम इंग्लैंड की विधियों के विरुद्ध नहीं होने चाहिए तथा उनका निबंधन उच्चतम न्यायालय में होना चाहिए जिसे उन पर निषेधाधिकार प्राप्त था। उनके द्वारा निर्मित नियमों एवं अधिनियमों के विरुद्ध ब्रिटिश सरकार में अपील की जा सकती थी। इसके अतिरिक्त गवर्नर जनरल एवं उनकी परिषद् का यह कर्तव्य था कि वे उन सब नियमों एवं विनियमों को इंग्लैंड भेजें तथा वहां सपरिषद् राजा को दो वर्षों की अवधि तक उन्हें अस्वीकृत करने का अधिकार प्राप्त था।

### 1833 का चार्टर अधिनियम

सरकार के विधि-निर्माण संबंधी कार्यों को स्पष्ट करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने 1833 के चार्टर अधिनियम का निर्माण किया। इसने भारतीय संवैधानिक व्यवस्था में कुछ ठोस परिवर्तन किए। विधि निर्माण का एकाधिकार सपरिषद् गवर्नर-जनरल में सन्निहित किया गया। परिषद् के सदस्यों की संख्या चार रखी गई, जिनमें से एक विधि-सदस्य होता था जिसे परिषद्

की बैठक में उसी समय अधिकारिक रूप से उपस्थित होने का अधिकार प्राप्त था जब परिषद् विधि-निर्माण का कार्य कर रही हो। इस प्रकार परिषद् के कार्यों को दो वर्गों में बाँट दिया गया। जब यह कार्यपालिका के रूप में कार्य करती तो इसमें गवर्नर जनरल के अतिरिक्त चार सदस्य होते थे। इस प्रकार इस अधिनियम के द्वारा भावी केंद्रीय विधान मंडल अथवा शाही विधान परिषद् की नींव डाल दी गई।

### 1853 का चार्टर अधिनियम

तत्कालीन विधायिका को सशक्त बनाने के लिए 1853 का चार्टर अधिनियम निर्मित किया गया जिसके द्वारा विधायिका का विस्तार किया गया। नए अधिनियम के अंतर्गत गवर्नर जनरल की परिषद् में (जब वह विधायिका के रूप में कार्य करती हो) 6 नए सदस्यों की वृद्धि की गई। ये 6 नए सदस्य थे मद्रास, बंबई, बंगाल तथा पश्चिमोत्तर प्रांतों में से प्रत्येक से एक एक प्रतिनिधि तथा एक मुख्य न्यायाधीश एवं एक कनिष्ठ न्यायाधीश। इनके अतिरिक्त मुख्य सेनापति को असाधारण सदस्यता प्रदान की गई। इस प्रकार विधान परिषद् की कुल संख्या 12 हो गई।

### 1858 का अधिनियम

1857 के प्रथम स्वतंत्रता-संग्राम के परिणाम स्वरूप ईस्ट इंडिया कंपनी का युग समाप्त हो गया। 1858 में ब्रिटिश ताज ने कंपनी का शासन अपने हाथ में ले लिया। 1858 के अधिनियम के अंतर्गत यहाँ की संवैधानिक व्यवस्था में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए, जिनके अनुसार : 1. कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स तथा बोर्ड ऑफ कंट्रोल को समाप्त कर उनके अधिकार ब्रिटिश मंत्रिमंडल के एक सदस्य को सौंप दिए गए। 2. उसे भारत मंत्री का पद प्रदान किया गया तथा भारतीय शासन के अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण के अधिकार प्रदान किए गए, 3. भारत मंत्री की सहायता के लिए एक भारतीय परिषद् का गठन किया गया, 4. गवर्नर जनरल तथा प्रेसीडेंसियों के गवर्नरों की नियुक्ति ताज के द्वारा की जानी थी तथा उनकी परिषदों की नियुक्ति सपरिषद् भारत मंत्री द्वारा की जानी थी, 5. लैफ्टिनेंट गवर्नरों की नियुक्ति गवर्नर जनरल द्वारा की जानी थी, किंतु उस पर महारानी की स्वीकृति आवश्यक थी तथा सिविल सर्विस में नियुक्ति खुली प्रतियोगिता तथा सिविल सर्विस कमीशन की सहायता से की जानी थी।

### 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम

सन् 1861 में ब्रिटिश सरकार ने विधान परिषदों में विस्तार करने का निर्णय लिया। यह कार्य 1861 में भारतीय परिषद् अधिनियम के माध्यम से किया गया। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान इस प्रकार थे : 1. विधि-निर्माण के प्रयोजनार्थ गवर्नर जनरल की परिषद् में 6 से 12 सदस्यों की वृद्धि की गई, जिनका कार्य-काल दो वर्ष निर्धारित किया गया, 2. कुछ विषयों को प्रस्तावित करने के लिए गवर्नर जनरल की पूर्वानुमति आवश्यक थी, 3. भारतीय विधान मंडल द्वारा पारित प्रत्येक प्रस्ताव पर सपरिषद् भारत मंत्री के माध्यम से महारानी की स्वीकृति आवश्यक थी, 4. गवर्नर जनरल को निषेधाधिकार प्राप्त था तथा आपात स्थिति में वह अध्यादेश भी जारी कर सकता था, 5. गवर्नर जनरल की परिषद् में कार्यकारी कार्यों के प्रयोजनार्थ एक और नए सदस्य की वृद्धि की गई।

### 1892 का भारतीय परिषद् अधिनियम

भारतीय विधान परिषदों के विस्तार एवं उन्हें अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए सन् 1892 में एक नया

अधिनियम निर्मित किया गया। उसकी मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार थीं : 1. केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों में 8 से 20 नए सदस्यों की नियुक्ति कर उनमें विस्तार किया गया, 2. इन नए सदस्यों में से 40 प्रतिशत गैर सरकारी होने चाहिए, 3. सपरिषद् गवर्नर जनरल को विधान परिषदों में वित्तीय विषयों की विवेचना करने तथा प्रश्न पूछने के संबंध में नियम बनाने का अधिकार दिया गया किंतु ऐसे नियमों पर सपरिषद् भारत मंत्री की सहमति अनिवार्य थी।

### 1909 का भारतीय परिषद् अधिनियम

20 वीं सदी के प्रारंभिक कुछ वर्षों में ब्रिटिश सरकार पर तीन प्रकार के दबाव पड़ रहे थे। एक ओर जहाँ उदारवादी अधिक सुधारों की माँग कर रहे थे तथा उग्रवादी स्वराज्य प्राप्ति के लिए आंदोलन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर क्रांतिकारी अपने लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् विदेशी शासन के अंत के लिए आतंकवादी उपायों का उपयोग कर रहे थे। असंतोष का कुछ सीमा तक शमन करने के लिए भारतीय परिषद् अधिनियम निर्मित किया गया, जिसकी विशेषताएँ निम्नानुसार हैं :

क. इसमें केंद्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों के विस्तार की व्यवस्था की गई।

ख. केंद्रीय विधान परिषद् में सरकारी सदस्यों के बहुमत की व्यवस्था रखी गई। इसमें चार प्रकार के सदस्य थे : पदेन सदस्य, मनोनीत सरकारी सदस्य, मनोनीत गैर सरकारी सदस्य तथा निर्वाचित सदस्य।

ग. प्रांतीय विधान परिषदों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत रखा गया किंतु सरकारी एवं मनोनीत गैर सरकारी सदस्यों की संख्या निर्वाचित सदस्यों की संख्या से अधिक रखी गई।

घ. इस अधिनियम ने विधान परिषदों के कार्यों एवं अधिकारों में वृद्धि की, जिसके अनुसार : 1. सदस्यों को बजट अंतिम रूप से स्वीकार करने से पूर्व बजट की विवेचना करने तथा प्रस्ताव प्रस्तावित करने का अधिकार प्रदान किया गया, 2. उन्हें पूरक प्रश्न पूछने, स्थानीय संस्थाओं को कर्ज देने, अतिरिक्त अनुदान देने तथा नए कर लगाने से संबंधित प्रस्तावों को प्रस्तावित करने का भी अधिकार दिया गया 3. सार्वजनिक हित से संबंधित विषयों की विवेचना करने, प्रस्ताव पारित करने तथा उन पर मत-विभाजन की माँग करने का अधिकार दिया गया। किंतु सदन द्वारा पारित प्रस्ताव सरकार के लिये बाध्यकारी नहीं थे।

ङ. इस अधिनियम की एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण, किंतु दुर्भाग्यशाली, व्यवस्था पृथक तथा भेदभाव पूर्ण निर्वाचक मंडल का गठन थी। परिषद् में निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों को वर्ग, समुदाय तथा हितों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में रखा गया, उदाहरणार्थ, प्रांतीय विधान परिषदों के निर्वाचन के लिए तीन वर्गों : सामान्य विशिष्ट एवं वर्ग विशेष (जैसे भूस्वामियों तथा व्यापार मंडलों) की व्यवस्था की गई। केंद्रीय विधान परिषद् के लिए एक और वर्ग (मुस्लिम वर्ग) को सम्मिलित किया गया। निर्वाचक मंडल की सदस्यता के लिए आय, संपत्ति एवं शैक्षणिक योग्यता को आधार बनाकर भेदभावपूर्ण नीति अपनाई गई।

### 1919 का भारतीय शासन अधिनियम

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान गाँधीजी ने भारतीयों को युद्ध में अंग्रेजों का साथ देने का आह्वान किया

क्योंकि वे लोकतंत्र की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे थे। जन साधारण को यह आशा थी कि युद्ध की समाप्ति पर उन्हें भी लोकतांत्रिक अधिकार प्राप्त होंगे। जनता की इसी आशा को कुछ सीमा तक, पूरा करने के लिए 1919 का भारतीय शासन अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाएँ निम्नानुसार थीं :

क. *प्रस्तावना :* अधिनियम की प्रस्तावना में उन आधारभूत सिद्धांतों एवं नीतियों का उल्लेख किया गया था, जिन पर वह अधिनियम आधारित था। इसके अनुसार ब्रिटिश संसद की यह नीति थी कि : 1. भारतीय प्रशासन की सभी शाखाओं में भारतीयों के सहयोग में वृद्धि की जाए, 2. स्वशासी संस्थाओं का इस प्रकार विकास किया जाए कि धीमे-धीमे भारत वर्ष में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन नयी सरकार की स्थापना की जा सके, 3. ब्रिटेन की संसद इस लक्ष्य को प्राप्त करने की पद्धति एवं गति निर्धारित करेगी। प्रस्तावना में विकेन्द्रित एकात्मक शासन का सुझाव दिया गया।

ख. *कार्यों का वितरण :* अधिनियम द्वारा सरकारी कार्यों को, *केंद्रीय* एवं *प्रांतीय*-दो भागों में बाँटा गया। प्रांतीय विषयों को पुनः दो भागों – *हस्तांतरित* एवं *संरक्षित* में विभक्त किया गया। हस्तांतरित विषयों का शासन राज्यपाल उन मंत्रियों के परामर्श से कर सकते थे, जो विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होते। संरक्षित विषयों का शासन राज्यपाल उन परामर्शदाताओं की सहायता से करने वाले थे, जो विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। इस प्रकार, प्रांतों में द्वैध शासन प्रणाली प्रारंभ की गई। द्वैध शासन से अभिप्राय यहाँ एक ऐसी शासन प्रणाली से था जिसमें उत्तरदायी और अनुत्तरदायी दोनों तत्वों का समावेश हो।

ग *सदस्यों के वर्ग :* इस अधिनियम द्वारा विधान परिषदों में तीन प्रकार के सदस्यों : निर्वाचित, मनोनीत सरकारी एवं मनोनीत गैर सरकारी-की व्यवस्था की गई। पहले वर्ग में लगभग 70 प्रतिशत सदस्य, द्वितीय वर्ग में लगभग 10 प्रतिशत तथा तृतीय वर्ग में लगभग 20 प्रतिशत सदस्य रखे गए। इस प्रकार विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया।

घ. *निर्वाचन क्षेत्र तथा मताधिकार :* इस अधिनियम के द्वारा सीमित मताधिकार तथा सांप्रदायिक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था की गई। मताधिकार संबंधी योग्यता भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न थी तथा एक ही प्रांत में ग्रामीण क्षेत्रों तथा शहरी क्षेत्रों में भी भिन्नता रखी गई। निर्वाचन क्षेत्रों को दो वर्गों, सामान्य तथा विशिष्ट, में वर्गीकृत किया गया। सामान्य वर्ग से हिंदू, मुसलमान, ईसाई, आंग्ल भारतीय, सिख इत्यादि निर्वाचित किए जाने थे जब कि विशिष्ट वर्ग से भू-स्वामियों, विश्वविद्यालयों, व्यापार मंडलों आदि का प्रतिनिधित्व होना था।

ङ. *केंद्रीय विधान मंडल की सदस्य संख्या :* इस अधिनियम के द्वारा केंद्र में द्वैध सदनीय विधान मंडल, राज्य परिषद् तथा केंद्रीय विधान सभा, की व्यवस्था की गई। राज्य परिषद् में 60 सदस्य होते थे, जिनमें से 33 का निर्वाचन होता तथा, 27 मनोनीत होते थे। केंद्रीय विधान सभा में कुल 145 सदस्य होते थे, जिनमें से 104 निर्वाचित होते थे तथा 41 मनोनीत।

च. *केंद्रीय विधान मंडल के अधिकार :* केंद्रीय विधान मंडल को केंद्रीय सूची में उल्लिखित विषयों के बारे में विचार करने, विधि निर्माण करने अथवा उसे अस्वीकार करने का अधिकार प्रदान किया गया। किंतु केंद्रीय विधानमंडल द्वारा पारित किसी भी विधेयक पर अंतिम निर्णय का अधिकार गवर्नर जनरल को प्राप्त था। उसे यह अधिकार प्राप्त था कि वह किसी भी विधेयक अथवा उसके किसी भी हिस्से पर इस आधार पर विचार विमर्श रोक सकता कि उससे देश की शांति और व्यवस्था को क्षति पहुँच सकती है। वह विधान मंडल में किसी भी प्रश्न को उठाने और किसी भी विषय पर चर्चा करने से रोक सकता था तथा कार्य-स्थगन प्रस्ताव को अस्वीकार कर सकता था। यदि विधान मंडल ने किसी विधेयक को अस्वीकार कर दिया तब भी वह उसे इस आधार पर अधिनियमित कर सकता था कि वह साम्राज्य की सुरक्षा तथा शांति के लिए परम आवश्यक था।

केंद्रीय विधान मंडल के वित्तीय अधिकार भी बहुत सीमित थे। बजट को दो भागों में बाँटा जाता था, पहले जिस पर सदस्य मतदान कर सकते तथा दूसरे जिस पर सदस्य मतदान नहीं कर सकते थे। कुल खर्च के केवल एक तिहाई भाग पर ही सदस्य मतदान कर सकते थे, शेष दो तिहाई भाग पर वे मतदान नहीं कर सकते थे। जिन विषयों में उन्हें मतदान का अधिकार प्राप्त था, उन पर भी गवर्नर जनरल को यह अधिकार प्राप्त था कि सदस्यों द्वारा अस्वीकृत किए गए अथवा उनमें कटौती किए जाने पर भी वह उन्हें इस आधार पर पुनर्जीवित कर सकता था कि उसे अपने कर्त्तव्य-पालन करने के लिए ऐसा करना आवश्यक है।

छ. *प्रांतीय विधान मंडलों के अधिकार :* प्रांतीय विधान मंडलों के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न थी। प्रांतीय विधान मंडलों को प्रांतीय विषयों के संबंध में विधि बनाने के अधिकार प्राप्त थे। किंतु ये अधिकार गवर्नरों के अधिकारों के कारण अत्यधिक सीमित हो गए थे। गवर्नर किसी भी समय किसी भी विधेयक पर विधान मंडल को विचार करने से यह कह कर मनाही कर सकता था कि विधेयक प्रांत की शांति एवं सुरक्षा के लिए हानिकारक था। वह किसी भी विधेयक को सदन के पास पुनर्विचार के लिए भेज सकता था। वह उसे गवर्नर जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता था एवं गवर्नर जनरल ब्रिटिश ताज के विचारार्थ उसे सुरक्षित रख सकता था। गवर्नर विधान परिषद् द्वारा पारित किसी भी विधेयक पर निषेधाधिकार का प्रयोग कर सकता था। यदि परिषद् संरक्षित विषय से संबद्ध किसी विधेयक पर विचार करने से इंकार कर देती अथवा उसे पारित नहीं करती तो गवर्नर अपने प्रमाणीकरण संबंधी अधिकार से उसे यह कह कर पारित कर सकता था कि ऐसा करना उसके उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए आवश्यक था।

अधिनियम द्वारा परिषदों को प्रांतीय वित्त पर भी कुछ नियंत्रण दिया गया था किंतु गवर्नर के विशेषाधिकार के कारण वह भी अत्यधिक संकुचित हो गया था। बजट को दो भागों में विभक्त किया गया था। बजट के लगभग 70

प्रतिशत भाग पर केवल विचार विमर्श ही संभव था, उस पर मतदान नहीं हो सकता था। शेष 30 प्रतिशत भाग पर परिषद् मतदान तो कर सकती थी किंतु उसकी किसी कटौती अथवा अस्वीकृति होने पर भी गवर्नर यह कहकर उसे पुनः प्रतिष्ठित कर सकता था कि अपने कर्त्तव्यों के निर्वहन के लिए उसके लिए यह आवश्यक था। आपात की स्थिति में गवर्नर को किसी भी मद में किसी भी खर्च की स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त था।

ज. *कार्यकारी परिषद् :* यह केंद्रीय विधान मंडल के प्रति नहीं, अपितु भारत मंत्री के प्रति उत्तरदायी थी। इस परिषद् के 6 सदस्यों में से तीन भारतीय होने चाहिए। भारतीय उच्च न्यायालय का कोई भी वकील इस परिषद् का सदस्य बनने योग्य था।

झ. *भारत मंत्री :* केंद्रीय एवं प्रांतीय प्रशासन पर भारत मंत्री के नियंत्रण को घटा दिया गया।

## 1935 का भारतीय शासन अधिनियम

सन् 1930–32 में लंदन में हुए गोल मेज़ सम्मेलनों ने भारत में प्रस्तावित संवैधानिक सुधारों के संबंध में कई संस्तुतियाँ की। 1935 का भारतीय शासन अधिनियम इन्हीं संस्तुतियों का परिणाम था। इस अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ निम्नानुसार थीं :

क. इस अधिनियम में 321 अनुच्छेद और 10 अनुसूचियाँ थीं। इसमें न केवल केंद्रीय वरन् प्रांतीय शासकीय तंत्र का भी विस्तार से वर्णन किया गया था। वास्तव में यह एक सुगठित एवं सुविस्तृत संविधान था।

ख. इसके द्वारा भारत में सर्वप्रथम संघीय शासन प्रणाली का प्रारंभ किया गया। संघ की इकाईयाँ दो प्रकार की थीं, ब्रिटिश भारतीय प्रांत तथा देशी रियासतें।

ग. इस अधिनियम ने शासकीय कार्यों को तीन सूचियों में सूचीबद्ध किया। संघ सूची में 59, प्रांतीय सूची में 54 तथा समवर्ती सूची में 36 विषय थे। संघीय सूची में संघ सरकार को तथा प्रांतीय सूची में प्रांतीय सरकार को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त थे। यहाँ पर यह बात उल्लेखनीय है कि देशी रियासतों में संघीय विधायिका का क्षेत्राधिकार संघ सूची के समस्त विषयों तक व्याप्त नहीं था। अधिनियम के अनुसार देशी रियासतों के प्रत्येक शासक को एक प्रवेश-पत्र भरना पड़ता था जिसमें उन विषयों का उल्लेख होता था जिन्हें वह संघीय सरकार को सौंपना चाहता था।

घ. इस अधिनियम में यह भी व्यवस्था थी कि संघीय शासन का गठन तभी संभव होगा जब उतनी रियासतें संघ में सम्मिलित होने के लिए तैयार हो जाएँ, जिनकी जनसंख्या समूची रियासतों की कुल जनसंख्या के आधे से अधिक हो तथा जिन्हें संघीय विधान मंडल के उच्च सदन में देशी रियासतों के लिए निर्धारित सदस्यों की कुल संख्या में से कम से कम आधे सदस्य भेजने का अधिकार प्राप्त हो।

ङ. प्रस्तावित संघीय विधायिका में दो सदनों के गठन की व्यवस्था थी। उच्च सदन का नाम राज्य सभा रखा गया तथा इसकी कुल सदस्य संख्या 260 निर्धारित की गई थी। इनमें से 156 सदस्य प्रांतों का प्रतिनिधित्व करने वाले थे, जब कि 104 सदस्यों का चयन देशी रियासतों के द्वारा होने वाला था। हिंदुओं, मुसलमानों तथा सिखों के

लिए निर्धारित सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा किया जाना था जबकि यूरोपीयों, आंग्ल भारतीयों तथा भारतीय ईसाईयों के लिए निर्धारित सदस्यों का निर्वाचन परोक्षरूप से एक ऐसे निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाना जिसके सदस्य वे होते थे जो प्रांतीय विधान मंडलों में इन समुदायों का प्रतिनिधित्व करते थे। शेष 6 सदस्यों का मनोनयन गवर्नर जनरल द्वारा किया जाना था। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि संघीय विधान मंडल में किसी देशी रियासत के प्रतिनिधियों की संख्या उस रियासत की जनसंख्या के आधार पर नहीं वरन् उस रियासत की महत्ता तथा उसकी सापेक्षिक स्थिति पर निर्भर थी।

संघीय विधान मंडल के निम्न सदन का नाम संघीय सभा रखा गया। इसके 375 सदस्यों में से 250 प्रांतों तथा 125 रियासतों का प्रतिनिधित्व करने वाले थे। रियासतों के प्रतिनिधियों को वहाँ के शासक मनोनीत करने वाले थे जब कि प्रांतों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन सांप्रदायिक आधार, परोक्षरूप से प्रांतीय विधान मंडलों द्वारा किया जाना था। उल्लेखनीय है कि सदन में रियासतों के सदस्यों की संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात में नहीं, वरन् रियासत की महत्ता पर होनी थी। इसी प्रकार सदन में विभिन्न प्रांतों के समुदायों का प्रतिनिधित्व उन समुदायों की जनसंख्या के अनुपात में होना था। सभा की कार्यावधि पाँच वर्ष रखी गई किंतु इससे पूर्व भी उसका विघटन किया जा सकता था।

च. संघीय विधान मंडल को संघ सूची तथा समवर्ती सूची से संबद्ध सभी विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त था। आपात काल में अथवा जब दो या अधिक प्रांत उसे ऐसा करने का अनुरोध करें तो संघीय विधान मंडल प्रांतीय सूची से संबद्ध विषयों पर भी विधि निर्माण कर सकता था, जिनका उल्लेख उनके प्रवेश-पत्र में होता।

कोई विधेयक उस समय तक अधिनियम नहीं बन सकता था जब तक वह दोनों सदनों द्वारा पारित तथा गवर्नर जनरल द्वारा स्वीकृत न हो। दोनों सदनों में मतभेद होने की स्थिति में दोनों की संयुक्त बैठक की व्यवस्था थी। संघीय विधान मंडल द्वारा पारित किसी भी विधेयक को स्वीकृत करने का अधिकार गवर्नर जनरल को प्राप्त था यद्यपि दोनों सदनों को प्रश्न पूछने, कार्य-स्थगन अथवा अन्य प्रस्तावों के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त था तथापि मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का अधिकार केवल संघीय सभा को ही था।

वित्तीय विषयों में दोनों सदनों को लगभग समान अधिकार प्राप्त थे। इसमें केवल एक अपवाद था। धन विधेयकों का प्रारंभ केवल संघीय सभा में ही हो सकता था। किंतु 1935 के इस अधिनियम द्वारा संघीय विधान मंडल को वित्तीय विषयों में केवल सीमित अधिकार ही प्राप्त थे। अधिनियम में बजट को दो भागों में बाँटने की व्यवस्था थी। प्रथम भाग का संबंध खर्च के 80 प्रतिशत से था जो संघीय विधान मंडल के नियंत्रण से मुक्त था। दूसरे भाग का संबंध खर्च के 20 प्रतिशत से था, जिस पर संघीय विधान मंडल की स्वीकृति आवश्यक थी। किंतु गवर्नर जनरल को यह अधिकार प्राप्त था कि वह संघीय

विधान मंडल द्वारा अस्वीकृत किसी भी धन राशि को पुनः प्रतिष्ठित कर सकता था।

छ. इस अधिनियम के द्वारा संघ स्तर पर द्वैध शासन की व्यवस्था की गई। संघीय विषयों को दो वर्गों, *संरक्षित* तथा *हस्तांतरित*, में वर्गीकृत किया गया। संरक्षित विषय थे : प्रतिरक्षा, वैदेशिक संबंध, चर्च से संबंधित विषय, जनजातियों से सम्बद्ध विषय। इन विषयों में गवर्नर जनरल को स्वविवेक से शासन करने का अधिकार प्राप्त था। इन विषयों में उसकी सहायता परामर्शदाता करते थे, जिनकी नियुक्ति वह स्वयं करता था। इन विषयों में उसके लिए मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेना भी आवश्यक नहीं था। उपर्युक्त विषयों को छोड़कर शेष सभी विषयों की गणना हस्तांतरित की जाती थी। हस्तांतरित विषयों पर मंत्रियों का नियंत्रण होता था, जो संघीय विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होते थे। कुछ विषय ऐसे भी थे जिनके संबंध में गवर्नर जनरल को व्यक्तिगत निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त था। इन विषयों में गवर्नर जनरल को मंत्रिपरिषद् से परामर्श लेना आवश्यक था किंतु वह ऐसे परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं था।

ज. इस अधिनियम के द्वारा एक संघीय न्यायालय के गठन की भी व्यवस्था थी जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा अधिक से अधिक 6 अन्य न्यायाधीश होते थे। इनकी नियुक्ति इंग्लैंड के राजा द्वारा होती थी तथा वे 65 वर्ष की आयु में अवकाश ग्रहण करते। इससे पूर्व भी इंग्लैंड का राजा उन्हें कदाचार अथवा शारीरिक या मानसिक असमर्थता के आधार पर प्रीवी कौंसिल की न्यायिक समिति की सिफारिश पर पद-मुक्त कर सकता था।

न्यायालय को मौलिक, अपीलीय तथा परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार प्राप्त था। यह एक अभिलेख न्यायालय था तथा उसे अपनी अवमानना के लिए दंड देने की शक्ति प्राप्त थी। किंतु यह न्यायालय अपील का सर्वोच्च न्यायालय नहीं था, इसके निर्णयों के विरुद्ध इंग्लैंड की प्रीवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी।

झ. इस अधिनियम द्वारा प्रांतों की द्वैध शासन व्यवस्था, जिसका प्रारंभ 1919 के भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा किया गया था, का अंत कर दिया गया। अब गवर्नरों को स्वविवेक अथवा व्यक्तिगत निर्णय संबंधी अधिकारों को छोड़, अन्य सभी विषयों में मंत्रिपरिषद्, जो प्रांतीय विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी थी, के परामर्श के अनुसार कार्य करना होता था।

इस अधिनियम में उन विषयों का उल्लेख नहीं है जिनके संबंध में गवर्नरों को स्वविवेक संबंधी अधिकार प्राप्त थे। इन विषयों का निर्धारण गवर्नर को स्वविवेक से करना था। गवर्नर इस अधिकार का दुरुपयोग कर, प्रांतीय स्वायत्तता की समूची व्यवस्था को मखौल बना सकते थे।

इस अधिनियम द्वारा 6 प्रांतों में द्विसदनीय तथा 5 प्रांतों में एक सदनीय विधान मंडलों की व्यवस्था की गई। विधानमंडल के निम्न सदन को विधानसभा तथा उच्च सदन को विधानपरिषद् कहा गया। उच्च एवं निम्न सदनों के सदस्यों की संख्या भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न रखी

गई। यद्यपि विधान सभाओं में मनोनीत वर्ग की समाप्ति कर दी गई तथापि विधान परिषदों में कुछ मनोनीत सदस्यों को रखने की व्यवस्था जारी रखी गई ।

इस अधिनियम द्वारा विधानमंडल के दोनों सदनों के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था की गई। विधानमंडलों में विभिन्न समुदायों की संख्या के निर्धारण का आधार रेमसे मैकडोनाल्ड द्वारा दिया गया तथा पूना समझौते द्वारा संशोधित सांप्रदायिक निर्णय था। इस योजना का मूल सिद्धांत यह था कि विधानमंडल में जिस समुदाय के लिए जो संख्या निर्धारित हो उसका निर्वाचन उसी समुदाय द्वारा उसी समुदाय से किया जाए ।

ट. प्रांतीय विधान मंडलों को प्रांतीय सूची तथा समवर्ती सूची, दोनों से संबद्ध विषयों पर विधि निर्माण का अधिकार प्राप्त था। किंतु समवर्ती सूची से संबद्ध किसी विषय पर यदि दोनों, संघीय विधान मंडल तथा प्रांतीय विधान मंडल द्वारा विधि निर्मित की गई है और उन दोनों में परस्पर विरोध है तो जिस सीमा तक एक प्रांतीय विधि केंद्रीय विधि के विरुद्ध है उस सीमा तक वह अवैध मानी जाएगी तथा संघीय विधि मान्य होगी।

अधिनियम द्वारा प्रांतीय विधान मंडलों के विविध निर्मात्री अधिकारों की कुछ सीमाएँ भी निर्धारित की गई थीं। कुछ विषयों में विधान मंडल में विधेयक प्रस्तुत करने से पूर्व गवर्नर जनरल की पूर्वानुमति आवश्यक थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट के द्वारा निर्मित अधिनियम, गवर्नर जनरल अथवा गवर्नरों द्वारा निर्मित अधिनियम अथवा गवर्नरों के स्वविवेक संबंधी अधिकारों को प्रभावित करने वाले विधेयक इस श्रेणी में आते थे।

यद्यपि दोनों सदनों को प्रश्नों, पूरक प्रश्नों अथवा कार्य-स्थगन प्रस्तावों आदि के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करने का अधिकार प्राप्त था तथापि मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे अपदस्थ करने का अधिकार केवल विधानसभा को प्राप्त था।

विधान मंडलों को वित्तीय विषयों में भी कुछ सीमित अधिकार प्राप्त थे। बजट को दो भागों में बाँटा गया था। प्रथम भाग खर्च के 30 प्रतिशत से संबद्ध था, जिस पर सदन मतदान कर सकता था। दूसरे भाग का संबंध खर्च के 70 प्रतिशत से था जिस पर सदन को मतदान करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। जिन विषयों में सदन को मतदान का अधिकार प्राप्त था उनमें गवर्नरों को भी अधिकार प्राप्त था कि वे विधान मंडल द्वारा अस्वीकृत किसी भी धन राशि को इस आधार पर पुनः प्रतिष्ठित कर सकते थे कि ऐसा करना प्रांत के कुशल प्रशासन के लिए आवश्यक है।

ठ. उपर्युक्त व्यवस्थाओं के अतिरिक्त अधिनियम में भारत परिषद् का विघटन करने, बर्मा को भारत से अलग करने, संघीय रेलवे प्राधिकरण की स्थापना करने तथा महाधिवक्ता एवं वित्तीय परामर्शदाता की नियुक्ति की भी व्यवस्था थी।

### मंत्रिमंडलीय योजना

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इंग्लैंड में नए चुनाव हुए, जिसमें लेबर पार्टी सत्तारूढ़ हुई, जो

भारत के प्रति सहानुभूति रखती थी। इसने पहले भारत की राजनैतिक स्थिति की जाँच के लिए एक संसदीय शिष्ट मंडल भेजा तदुपरान्त उसके प्रतिवेदन के अनुसार ब्रिटिश मंत्रिमंडल के तीन सदस्यों की एक समिति को भी भेजा जिसे एक ऐसे फार्मूले को ढूँढ़ निकालने का काम सौंपा गया, जो सभी प्रमुख राजनैतिक दलों को स्वीकार्य हो।

यह मंत्रिमंडलीय समिति सभी राजनैतिक दलों के प्रमुख नेताओं से मिली तथा उनसे विचार विमर्श करने के उपरांत उसने एक योजना दो किश्तों में प्रस्तुत की। 16 मई 1946 को इसने दीर्घकालीन समझौते के लिए कुछ प्रस्ताव रखे तथा 16 जून 1946 को एक अंतरिम सरकार के गठन से संबंधित सुझाव प्रस्तुत किए।

*दीर्घकालिक योजना :* समिति ने इस समझौते से संबंधित अधोलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किए :

क. भारत में एक संघीय शासन की स्थापना की जानी चाहिए जिसके घटक ब्रिटिश भारतीय प्रांत तथा देशी रियासतें हों।

ख. संघीय सरकार का क्षेत्राधिकार वैदेशिक संबंध संचालन, प्रतिरक्षा तथा संचार व्यवस्था तक सीमित होना चाहिए तथा इसके लिए आवश्यक वित्तीय साधन जुटाने का अधिकार उसे प्राप्त होना चाहिए।

ग. संघ की एक कार्यपालिका तथा एक विधायिका होनी चाहिए जिसमें प्रांतों तथा देशी रियासतों का प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

घ. किसी भी महत्त्वपूर्ण सांप्रदायिक प्रश्न पर विधान मंडल का निर्णय उसमें उपस्थित तथा मतदान करने वाले उस सम्प्रदाय के कुल सदस्यों के बहुमत से होना चाहिए।

ङ. प्रांतों को अपने समूह बनाने, उन समूहों को कौन कौन से प्रांतीय विषय सौंपे जाएँ, इसका निश्चय करने तथा समूह के लिए विधायिका और कार्यपालिका निर्मित करने से संबंधित निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

च. संघ और समूहों के संविधानों में ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि कोई भी प्रांत अपनी विधान सभा के बहुमत से संघ अथवा समूह के संविधान की व्यवस्थाओं में पुनर्विचार की माँग कर सके। इस प्रकार की माँग प्रत्येक दस वर्ष के अंतराल पर की जा सकती थी।

*संविधान निर्माण से संबंधित प्रस्ताव :* दीर्घकालिक योजना के अंतर्गत संविधान के निर्माण से संबंधित कुछ सुझाव दिए गए :

क. एक संविधान सभा का गठन होना चाहिए जिसमें 389 सदस्य हों। इनमें से 296 प्रांतों का प्रतिनिधित्व करते हों तथा 93 देशी रियासतों का। संविधान सभा में किस प्रांत के कितने सदस्य होंगे इसका निर्णय वहाँ की जनसंख्या के आधार पर किया जाएगा। किसी प्रांत के लिए निर्धारित सदस्य संख्या को वहाँ के मुख्य समुदायों (सामान्य, मुसलमान तथा सिख) में उनकी जनसंख्या के अनुपात में बाँट दिया जाए तथा उनका निर्वाचन विधान सभाओं में उन समुदायों के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाए। संविधान सभा में देशी रियासतों के प्रतिनिधियों की संख्या का निर्धारण भी उनकी जनसंख्या के अनुपात में किया जाए, किंतु उनके प्रतिनिधियों के चयन की प्रक्रिया एक विचार विमर्श समिति द्वारा निश्चित की जानी चाहिए।

ख. संविधान सभा के गठन के बाद उसे निम्नलिखित तीन समूहों में बाँट दिया जाए :

1. वे प्रांत जिनमें हिंदुओं का बहुमत है तथा जिन पर पाकिस्तान के लिए दावा नहीं है। उनके नाम हैं: मद्रास, बंबई, संयुक्त प्रांत, बिहार तथा उड़ीसा।
2. वे उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र जिन पर पाकिस्तान के लिए दावा किया जाता है तथा जिनमें मुसलमानों का बहुमत है। उनके नाम हैं : पंजाब, उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश तथा ब्रिटिश बलूचिस्तान।
3. वे पूर्वोत्तर क्षेत्र जिन पर पाकिस्तान के लिए दावा किया जाता है तथा जिनमें मुसलमानों का बहुमत है उनके नाम हैं : बंगाल और आसाम।
4. प्रत्येक समूह को अपने में सम्मिलित प्रांतों का संविधान सुनिश्चित करने तथा यह निर्णय लेने का अधिकार होगा कि समूचे समूह के लिए किसी संविधान के निर्माण की आवश्यकता है अथवा नहीं, और यदि है तो उसको क्या अधिकार दिए जाएँ।
5. समूहों के संविधान सुनिश्चित हो जाने के उपरांत सभी समूह मिलकर संघीय संविधान का स्वरूप निर्धारित करें।
6. नवीन संविधान के अंतर्गत प्रथम निर्वाचन हो जाने के पश्चात् प्रांत को अपने विधान मंडल के प्रस्ताव द्वारा यह निश्चित करने का अधिकार होगा कि वह उस समूह में रहे अथवा नहीं, जिसमें उसे रखा गया है।

*भारत और ब्रिटेन में संधि :* संविधान सभा तथा इंग्लैंड के बीच एक संधि होगी जिसमें सत्ता हस्तांतरण से उठने वाली समस्याओं का समाधान निकाला जाएगा। इंग्लैंड को भारत से यह आशा थी कि भारतवर्ष कॉमनवेल्थ का सदस्य बना रहेगा यद्यपि उसे यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो कॉमनवेल्थ से अलग हो जाए।

*अल्पकालिक योजना :* इस योजना के अंतर्गत संविधान की निर्माणावधि में शासन संचालित करने के लिए तत्काल एक अंतरिम सरकार की स्थापना की कल्पना की गई थी। अंतरिम सरकार में कुल 14 सदस्यों के होने की व्यवस्था थी जिनमें से 6 कांग्रेस के, 5 लीग के, 1 भारतीय ईसाई, 1 सिख तथा 1 पारसी समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले थे।

अंतरिम सरकार में सभी पद भारतीयों को दिए जाने की व्यवस्था थी तथा ब्रिटिश सरकार की ओर से यह आश्वासन दिया गया था कि अंतरिम सरकार को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा उनमें उसका सहयोग उपलब्ध रहेगा।

*योजना का मूल्यांकन :* अनेक कमियों के बावजूद योजना को सभी मुख्य राजनैतिक दलों ने स्वीकार कर लिया तथा संविधान सभा का निर्वाचन संपन्न हो गया। किंतु शीघ्र ही योजना के अर्थ के संबंध में कांग्रेस और लीग में मतभेद हो गए। यद्यपि योजना में पाकिस्तान का नामोल्लेख कहीं नहीं हुआ तथापि उसका सार इसमें विद्यमान था। इसी के कारण विवाद बढ़ा तथा लीग ने अपनी स्वीकृति वापस ले ली।

*अंतरिम सरकार एवं प्रत्यक्ष कार्यवाही :* 14 अगस्त 1946 को जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व में अंतरिम सरकार की स्थापना हुई जिसमें मुस्लिम लीग सम्मिलित नहीं हुई। उसने 16 अगस्त 1946 को प्रत्यक्ष 'कार्यवाही दिवस' के रूप में मनाने की घोषणा की तथा उसी

दिन से हिंदुओं की मारकाट करने तथा उन्हें लूटने का कार्यारंभ हुआ जो चार दिनों तक चलता रहा जिसके फलस्वरूप हजारों लोग मारे गए तथा हजारों की संपत्ति लूटी गई। जहाँ एक ओर कलकत्ता, नोआखली, बिहार तथा अन्य स्थानों पर नरसंहार चल रहा था वहीं दूसरी ओर लीग को अंतरिम सरकार में लाने के प्रयत्न भी जोर शोर से चल रहे थे। परिणामस्वरूप 13 अक्टूबर 1946 को लीग अंतरिम सरकार में सम्मिलित हुई और यह सरकार अगस्त 1947 तक सत्तारूढ़ रही।

### माउंटबेटन योजना

केबिनेट मिशन की योजना के अनुसार संविधान सभा संविधान निर्माण कार्य में जुटी थी किंतु लीग ने इसका बहिष्कार किया जिसके कारण सत्ता हस्तांतरण के ब्रिटिश सरकार के कार्यक्रम में कठिनाई उत्पन्न हो गई। यद्यपि सत्ता हस्तांतरण के लिए जून 1948 तक की अवधि घोषित कर दी गई थी तथापि यह अनुभव किया जा रहा था कि ऐसी सभा को सत्ता हस्तांतरित करना उचित नहीं होगा जिसे पूर्णतया प्रतिनिधिमूलक नहीं कहा जा सकता। अतः किसी ऐसे फार्मूला को ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता थी जो सर्वमान्य हो। इसके लिए ब्रिटिश सरकार ने माउंटबेटन को गवर्नर जनरल बनाकर भारत भेजा, जो 24 मार्च 1947 को भारतवर्ष पहुँचे। जहाँ एक ओर माउंटबेटन सर्वमान्य फार्मूला ढूँढ़ने के लिए विभिन्न दलों से परामर्श कर रहे थे वहीं दूसरी ओर सांप्रदायिकता के तांडव नृत्य के कारण बंगाल व पंजाब के विभाजन की माँग जोर पकड़ रही थी। इससे माउंटबेटन को समस्या के समाधान का फार्मूला मिल गया और उसने भारत के विभाजन की योजना, जिसे माउंटबेटन योजना के नाम से भी जाना जाता है, घोषित कर दी।

इस योजना में कहा गया कि भारतीय समस्या का एकमात्र समाधान भारत का विभाजन है। विवाद-ग्रस्त तीन प्रांतों – असम, बंगाल तथा पंजाब का भी विभाजन किया जाएगा। उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश में जनमत के द्वारा यह निर्णय किया जाएगा कि वह प्रांत पाकिस्तान से मिलना चाहता है अथवा भारत में रहना चाहेगा।

इसी प्रकार असम के सिलहट भाग में जनमत द्वारा यह निश्चय किया जाएगा कि वह असम में रहना चाहेगा अथवा पूर्वी बंगाल में सम्मिलित होना चाहेगा, जो पाकिस्तान का एक अंग होगा ।

योजना में यह भी संकेत दिया गया कि ब्रिटिश सरकार जून 1948 के पूर्व भी भारत को सत्ता हस्तांतरित कर सकती है। चूँकि योजना को सभी बड़े दलों ने स्वीकार कर लिया अतः भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम विधेयक ब्रिटिश संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया। पार्लियामेंट द्वारा स्वीकृत हो जाने पर इसे 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम की संज्ञा दी गई।

### भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947

इस अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाएं निम्नानुसार थीं :

क. इस अधिनियम ने भारत और पाकिस्तान, इन दो स्वतंत्र अधिराज्यों की स्थापना की व्यवस्था की।

ख. इसमें पंजाब एवं बंगाल के विभाजन की व्यवस्था की गई तथा उनके बीच सीमा निर्धारित करने के लिए अलग-अलग सीमा आयोग बनाए गए।

ग. पाकिस्तान में पश्चिमी पंजाब तथा पूर्वी बंगाल के अतिरिक्त सिंधु उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश, आसाम का सिलहट भाग, बहावलपुर, खैरपुर, बलुचिस्तान तथा अन्य आठ कुछ छोटी देशी रियासतों को सम्मिलित किया गया।

घ. देशी रियासतों पर से ब्रिटिश ताज की अधिपति सत्ता समाप्त हो गई और उन्हें भारत या पाकिस्तान में से किसी भी अधिराज्य में सम्मिलित होने की छूट दे दी गई।

ङ. जनजातीय क्षेत्रों पर ब्रिटिश शासन का नियंत्रण समाप्त कर दिया गया तथा जो भी संधियाँ अथवा समझौते ब्रिटिश सरकार तथा जनजातियों के बीच, अधिनियम लागू होने के दिन विद्यमान थे, वे समाप्त कर दिए गए।

च. भारत तथा पाकिस्तान, दोनों अधिराज्यों के गवर्नर जनरलों की नियुक्ति, ब्रिटेन के राजा द्वारा की जानी थी। यदि दोनों को स्वीकार्य हो तो अधिनियम में दोनों के लिए एक ही गवर्नर जनरल रखने की व्यवस्था भी थी।

छ. दोनों अधिराज्यों की संविधान सभाएँ अपने-अपने देश का संविधान बनाने के लिए पूर्णतया स्वतंत्र थीं तथा उन पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं था। उन्हें कॉमनवेल्थ से अलग हो जाने की भी छूट थी।

ज. जब तक संविधान का निर्माण नहीं हो जाता तब तक प्रत्येक अधिराज्य का शासन प्रबंध 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा संपादित किया जाए जिसमें सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा आवश्यकतानुसार संशोधन, लोप अथवा अभिवृद्धि की जा सकती थी।

झ. प्रत्येक अधिराज्य में उस अधिराज्य की संविधान सभा उस समय तक विधान मंडल के रूप में कार्य करती रहेगी जब तक नवीन संविधान के अनुसार नए विधान मंडल का गठन न हो जाए।

ञ. स्वतंत्रता के बाद अधिराज्यों, प्रांतों अथवा उनके किसी भी भाग पर ब्रिटिश सरकार का नियंत्रण नहीं रहेगा।

ट. गवर्नर जनरल संवैधानिक प्रमुखों के रूप में कार्य करेंगे तथा विधान मंडलों द्वारा पारित किसी भी विधेयक को, ताज की ओर से स्वीकृति प्रदान कर सकेंगे।

ठ. गवर्नर जनरल को मार्च 1948 तक यह अधिकार प्रदान कर दिया गया कि वह 1947 के भारतीय शासन अधिनियम के प्रभावकारी कार्यान्वयन, दोनों अधिराज्यों में परिसंपत्ति का बँटवारा करने तथा अंतरिम काल में 1935 के अधिनियम के किसी उपबंध से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक आदेश जारी कर सके।

ड. जो व्यक्ति भारत मंत्री के द्वारा अथवा सपरिषद् भारत मंत्री के द्वारा ब्रिटिश ताज के अधीन किसी असैनिक सेवा में 15 अगस्त 1947 से पूर्व नियुक्त किए गए थे, वे स्वतंत्रता के पश्चात् भी उस सेवा में बने रहेंगे तथा उन्हें वे सब विशेषाधिकार, पेंशन, पारिश्रमिक तथा छुट्टियों संबंधी सुविधाएँ प्राप्त रहेंगी जो स्वतंत्रता से पूर्व उन्हें प्राप्त थी।

## अभ्यास

1. 1909 के भारतीय परिषद् अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं ?
2. 1919 के भारतीय शासन अधिनियम की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. द्वैध शासन का अर्थ स्पष्ट कीजिए। सर्वप्रथम इसका प्रारंभ कब किया गया ?
4. 1935 के भारतीय शासन अधिनियम की क्या मुख्य विशेषताएँ थीं ?
5. 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम के मुख्य प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
   क. मंत्रिमंडलीय योजना।
   ख. माउंटबेटन योजना।

अध्याय 2

# भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन और उसकी विरासत

भारत वर्ष पंद्रह अगस्त 1947 को स्वतंत्र हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रमुख भूमिका रही परंतु भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य कई संगठनों का इसमें उल्लेखनीय योगदान रहा।

## भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

यद्यपि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई तथापि इसके उद्गम का संबंध 19वीं शताब्दी के मध्य में कार्यरत तत्वों से किया जा सकता है जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :

*क. प्रथम स्वाधीनता संग्राम (1857) का प्रभाव :* इस संग्राम में भारत के विभिन्न भागों के शासक, सैनिक तथा नेता सर्वप्रथम एक दूसरे के संपर्क में आए। यद्यपि साधनों, समन्वय और समुचित योजना के अभाव के कारण यह संग्राम अपने मूल लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रहा तथापि इसके कारण समूचे भारत में एक राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ।

*ख. सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों का प्रभाव :* उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक-धार्मिक आंदोलनों; जैसे स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज, राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित ब्रह्म समाज, विवेकानंद द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन तथा मादाम ब्लावस्तकी और ऑलकॉट द्वारा स्थापित थियोसोफिकल सोसाइटी, ने भारतीय जनता में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अब भारतीय जनता अपने स्वर्णिम इतिहास पर गर्व का अनुभव करने लगी तथा भविष्य में पुनरोत्थान के प्रति उत्सुक हो गई।

*ग. ब्रिटिश शासन का प्रभाव :* यद्यपि ब्रिटिश शासन भारतीय जन-मानस के प्रति उदासीन था तथापि यह छद्म रूप में एक वरदान सिद्ध हुआ। इसने देश भर में रेल गाड़ियों तथा तारघरों का जो जाल फैलाया उसके कारण भारत के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के मन में ऐक्य की भावना का उदय एवं विकास हुआ।

*घ. पाश्चात्य शिक्षा :* पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के कारण भारतीय जनता पाश्चात्य चिंतकों के दर्शन के संपर्क में आई जिनमें राष्ट्रवाद, लोकतंत्र तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर विशेष बल दिया गया था।

*ङ. आर्थिक शोषण :* भारत में ब्रिटिश शासन की नीति आर्थिक शोषण पर आधारित थी। वह यहाँ के कच्चे माल को अत्यंत सस्ती कीमत पर खरीद कर ब्रिटिश उद्योग की पूर्ति के लिए इंग्लैंड भेजता था। ब्रिटिश उद्योग के तैयार माल को यहाँ महँगे दामों पर बेचा जाता था। यहाँ के कुटीर उद्योगों को हतोत्साहित किया जाता था तथा भारतीय बाजारों को इंग्लैंड के तैयार माल से पाट दिया जाता था।

*च. निर्दयी कृषि नीति :* ब्रिटिश शासन भारत के गरीब किसानों से भारी मालगुजारी वसूल करते थे जो

अधिकांशतः प्रकृति की अनिश्चितता पर निर्भर रहते थे। इसके कारण भारतीय किसानों के मन में ब्रिटिश शासकों के प्रति अत्यधिक रोष था।

*छ. भीषण अकाल :* उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में भारत में सात अकाल पड़े जिसमें लगभग दस लाख लोग मृत्यु के ग्रास बने तथा दूसरे अर्ध भाग में बीस अकाल पड़े जिनमें लगभग दो करोड़ लोग काल के ग्रास हो गए। ब्रिटिश शासन ने पीड़ित लोगों की पर्याप्त सहायता नहीं की ।

*ज. भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों की भूमिका :* जब भारतीय जनता ने यह देखा कि अंग्रेजी भाषा के समाचार पत्र भारतीयों के प्रति प्रतिकूल रुख रखते हैं तो उन्होंने भारतीय भाषाओं में समाचार पत्र प्रकाशित करने प्रारंभ कर दिए। ये समाचार पत्र ब्रिटिश शासन की जन विरोधी नीतियों का पर्दाफाश करने लगे। इसके परिणाम स्वरूप शासन ने भारतीय भाषा समाचार पत्र अधिनियम निर्मित किया, जिसके द्वारा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों की स्वतंत्रता सीमित कर दी गई। इसके कारण भारत तथा इंग्लैंड दोनों देशों में अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न हुआ जिसके फलस्वरूप उस अधिनियम को समाप्त कर दिया गया। किंतु ब्रिटिश शासन ने भारतीय जनता की भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाने के और उपाय खोज निकाले।

*झ. लॉर्ड लिटन के शासन काल के दमनकारी कार्य :* गवर्नर जनरल लॉर्ड लिटन के शासन काल में ऐसे अनेक कार्य किए गए जिनसे भारतीय जनता के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति कटुता उत्पन्न हो गई। जहाँ एक ओर 1876 में देश में भीषण अकाल पड़ा जिसमें हजारों लोग काल के ग्रास हो गए, वहीं दूसरी ओर लॉर्ड लिटन ने 1877 में महारानी विक्टोरिया द्वारा भारतीय सम्राज्ञी की उपधि धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक दरबार आयोजित किया, जिसमें भारतीय कोष से लाखों रुपए खर्च हुए। इन सब घटनाओं के साथ ही लॉर्ड लिटन ने भारत को अफगान युद्ध में झोंक दिया, जिसमें जन और धन की भारी क्षति हुई। इसी प्रकार भारतीयों को बिना लायसेंस के शस्त्र धारण करने पर भारी जुर्माना देना पड़ता था परंतु यूरोपीय लोगों पर इस प्रकार का कोई प्रतिबंध नहीं था। यह भारतीय जनता का अपमान था।

*ञ. इल्बर्ट विधेयक संबंधी विवाद :* उस समय प्रचलित विधि के अनुसार भारतीय मजिस्ट्रेट को यह अधिकार प्राप्त नहीं था कि वह किसी यूरोपीय व्यक्ति के खिलाफ किसी मुकदमे की सुनवाई कर उसे दंडित कर सके। इल्बर्ट विधेयक का उद्देश्य इस प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना था। यूरोपीय समुदाय के लोगों ने इस विधेयक के विरुद्ध ऐसा उग्र आंदोलन चलाया कि अंततोगत्वा सरकार को इसे वापस लेना पड़ा । इसका प्रभाव भारतीयों पर दो प्रकार से पड़ा : एक तो वे समझ गए कि उन्हें ब्रिटिश शासन से न्याय की आशा नहीं करनी चाहिए तथा दूसरे वे यह भी समझ गए कि अपने कष्टों के निवारण के लिए आंदोलन का ही अवलंबन लेना चाहिए।

*ट. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना :* उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति अत्यधिक असंतोष व्याप्त था। कुछ पर्यवेक्षकों की यह धारणा थी कि इस असंतोष को यदि समय से नियंत्रित नहीं किया गया तो यह 1857 की भाँति एक दूसरे विस्फोट का रूप ले लेगा। उनकी यह धारणा

थी कि भारत में भी ब्रिटेन के विरोध पक्ष की भाँति कोई एक ऐसा पक्ष होना चाहिए जो असंतोष की इस आग का शमन कर सके। ए. ओ. ह्यूम इसी विचारधारा से संबद्ध था। वह सोचता था कि यदि भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञ वर्ष में एक बार सामाजिक विषयों पर विचारार्थ एक मंच पर एकत्रित हो सकें तो यह देश के लिए बहुत लाभदायक होगा। उसने इस विषय पर भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन से बातचीत की, जिन्होंने उसे इस कार्य के लिए प्रोत्साहित किया। तदनुसार 28 दिसम्बर 1885 को बंबई में एक बैठक आयोजित की गई जिसकी अध्यक्षता डब्ल्यू. सी. बेनर्जी ने की। इस बैठक में निश्चय किया गया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नाम से एक अखिल भारतीय संगठन बनाया जाए और इसकी प्रथम बैठक में ही विभिन्न राजनैतिक तथा आर्थिक सुधारों से संबंधित प्रस्ताव पास किए जाएँ। यद्यपि ह्यूम चाहता था कि कांग्रेस अपने आप को केवल सामाजिक सुधारों तक ही सीमित रखे तथापि कांग्रेस ने राजनैतिक और आर्थिक सुधारों पर भी जोर दिया। इस प्रकार, 1885 में एक सुसंगठित राष्ट्रीय आंदोलन की मजबूत नींव रख दी गई।

### उग्रवादी आंदोलन

1885 से 1918 तक भारत में जिन नीतियों का अनुसरण किया गया उन्हें उदारवादी नीतियों के नाम से संबोधित किया जाता है। कांग्रेस के कुछ सदस्य इन नीतियों से संतुष्ट नहीं थे और वे इन्हें कुछ आक्रामक रूप देना चाहते थे। अपने इसी आक्रामक रुख के कारण उन्हें उग्रवादी कहा जाता था।

*उदारवादियों व उग्रवादियों में अंतर :* उदारवादियों को ब्रिटिश जनता की न्यायप्रियता में विश्वास था कि ब्रिटिश जनता भारतीयों की दयनीय स्थिति से परिचित नहीं है। यदि ब्रिटिश जनता को यहाँ की स्थिति का भान हो जाए तो उनकी सभी समस्याएँ दूर हो जाएँगी। इसलिए वे याचना पत्रों, प्रार्थना पत्रों, शिष्ट मंडलों तथा समाचार पत्रों में लेखादि का सहारा लेना चाहते थे। इसके विपरीत, उग्रवादियों का यह मत था कि जब कोई देश किसी दूसरे देश पर शासन करता है तो वह शासितों के हित में नहीं, वरन् शासकों के हित में कार्य करता है। उनके मतानुसार विदेशी शासन का आधार शोषण होता है। अतः वे जुलूसों, विरोध सभाओं, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, हड़तालों, धरनों, स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा स्वराज्य की माँग के माध्यम से अपनी माँगें मनवाने की नीति में विश्वास करते थे।

उदारवादियों का नेतृत्व गोपाल कृष्ण गोखले करते थे जबकि उग्रवादियों के नेता बाल गंगाधर तिलक थे। इन दोनों के दृष्टिकोणों के अंतर से उदारवादियों और उग्रवादियों के अंतर को स्पष्टतया समझा जा सकता है। पट्टाभि सीतारमैया के मतानुसार गोखले वर्तमान परिस्थिति में ही सुधार करना चाहते थे, जबकि तिलक उनकी पुनर्रचना करना चाहते थे, गोखले नौकरशाही के साथ कार्य करना आवश्यक समझते थे, जबकि तिलक उनसे संघर्ष आवश्यक मानते थे, एक ओर गोखले, जहाँ तक संभव हो वहाँ सहयोग, किंतु जहाँ विरोध आवश्यक हो, वहाँ विरोध करना चाहते थे, वहीं दूसरी ओर तिलक अड़ंगे की नीति अपनाना चाहते थे, जहाँ गोखले का आदर्श प्यार और सेवा था, वहीं तिलक का आदर्श सेवा और कष्ट सहना था, जहाँ गोखले अपने उपायों द्वारा विदेशी का मन जीतना चाहते थे, वहीं तिलक उनको

पदच्युत करना चाहते थे, जहाँ गोखले का उद्देश्य स्वशासन था, जिसकी प्राप्ति के लिए वे अंग्रेजों द्वारा निर्धारित समर्थता अर्जित करना चाहते थे, वहीं दूसरी ओर तिलक का उद्देश्य स्वराज प्राप्ति था जिसे वे जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे और उसकी प्राप्ति के लिए वे किसी भी विदेशी अड़ंगे को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे, जहाँ गोखले अपने युग की एक हस्ती थे, वहीं तिलक अपने समय से बहुत आगे थे।

*उग्रवादी आंदोलन के उदय एवं विकास के कारण :* 20वीं सदी के प्रथम दशक में उग्रवादी आंदोलन के उदय एवं विकास के कुछ कारण इस प्रकार हैं :

*1892 के भारतीय परिषद् अधिनियम से उत्पन्न असंतोष :* इस अधिनियम के द्वारा भारतीय शासन व्यवस्था में जो सुधार किए गए वे अपर्याप्त एवं असंतोषजनक थे। परिषदों में शासन द्वारा मनोनीत सदस्यों का आधिपत्य था जो शासकीय अत्याचारों का यदाकदा ही विरोध करते थे। निर्वाचित सदस्य भी निहित हितों द्वारा निर्वाचित होने के कारण अप्रभावशाली ही रहते थे।

*हिंदुत्व का पुनरोत्थान :* तीनों उग्रवादियों, बाल (बाल गंगाधर तिलक), पाल (विपिन चंद्र पाल), तथा लाल (लाला लाजपत राय) ने हिंदुत्व के पुनरोत्थान की प्रेरणा दी। महाराष्ट्र में तिलक ने गणेश पूजा का प्रारंभ किया तथा एक पखवाड़े तक गणेशोत्सव मनाने की योजना बनाई, जिसमें धार्मिक पूजा की ओट में राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत भाषण और वाद-विवाद आयोजित होते थे। इसी प्रकार, बंगाल में विपिन चंद्र पाल ने काली पूजा प्रारंभ की तथा एक पखवाड़े तक दुर्गोत्सव मनाने की योजना बनाई, जिसमें धर्म की ओट में ऐसे वाद-विवाद तथा भाषण आयोजित किए जाते थे जिनसे जनता, विशेष कर नौजवानों के मन में राष्ट्रीयता की भावना भर जाती थी। इन सब गतिविधियों के परिणामस्वरूप देश में एक नई जागृति उत्पन्न हुई।

*आर्थिक शोषण :* भारत में ब्रिटिश शासन ने ऐसी आर्थिक नीतियों का अवलंबन किया कि जिनसे भारत के गरीब लोग दिन-प्रतिदिन और अधिक गरीब होते चले गए। दादा भाई नौरोजी तथा रमेश चंद्र दत्त ने अपने लेखों द्वारा ब्रिटिश शासन की शोषण-नीति का पर्दाफाश किया। इसके कारण ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असंतोष और अधिक भड़का।

*अकाल :* 1896-97 में एक बड़ा अकाल पड़ा, जिससे भारत के विभिन्न भागों में दो करोड़ लोग प्रभावित हुए। सरकार ने राहत के लिए कुछ भी नहीं किया इसके कारण भारतीय जनता के मन में तीव्र क्षोभ उत्पन्न हो गया।

*प्लेग :* जहाँ एक ओर अकाल के कारण अनेक लोग मर रहे थे, वहीं दूसरी ओर पूना में भीषण प्लेग फैल गया। प्लेग को फैलने से रोकने में सरकार की असफलता के कारण लोग इस सीमा तक क्षुब्ध हो गए कि पूना के कमिश्नर रैंड को दामोदर हरि चापेकर नामक एक व्यक्ति ने गोली मार दी। चापेकर को तो फाँसी पर लटका ही दिया गया किंतु साथ ही अनेक निरपराध व्यक्तियों को भीषण यातनाएँ दी गईं। इसके कारण भारतीय जन मानस में क्षोभ और बढ़ गया।

*लॉर्ड कर्ज़न एवं अन्य गवर्नर जनरलों के दमनकारी कार्य :* गवर्नर जनरल एलगिन के शासन काल में ऐसे कई अप्रिय कार्य किए गए जिनसे जनता बहुत त्रस्त हो गई। उसके शासन काल में एक बड़ा अंकाल

पड़ा। जनता की सहायता करने के बजाए उसने सेना के विस्तार तथा दिल्ली में एक भव्य दरबार आयोजित करने में बहुत अधिक खर्च किया। एक लेखक के अनुसार जितनी राशि दरबार पर खर्च की गई उससे आधी भी यदि अकाल राहत में खर्च की गई होती तो उससे लाखों पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की जान बचायी जा सकती थी। लॉर्ड कर्जन के शासन काल में ऐसी कई घटनाएँ घटित हुईं जिन्होंने जले पर नमक का कार्य किया। उसके शासन काल में कलकत्ता कार्पोरेशन एक्ट, ऑफिशियल सिकेट्ट एक्ट तथा इंडियन युनिवर्सिटी एक्ट पारित किए गए, जिनके द्वारा भारतीय जनता की स्वतंत्रता को सीमित कर दिया गया। उन्होंने भारतीय संस्कृति के संबंध में भी अपमान जनक टिप्पणी की।

*बंगाल का विभाजन तथा स्वदेशी आंदोलन :* लॉर्ड कर्जन के शासन काल में बुरी नीयत से बंगाल का विभाजन किया गया। वह बंग-भंग के द्वारा एक मुस्लिम बहुल प्रांत बनाना चाहता था। इसके विरुद्ध एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुई और जनता ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग का निर्णय लिया। उन्होंने आयातित वस्तुओं की होली भी जलाई। सरकार द्वारा उठाए गए दमनकारी कदमों ने जनता के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति क्षोभ में अत्यधिक वृद्धि की।

*विदेशी घटनाएँ :* उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम कुछ वर्षों में यूरोप में ऐसी कई घटनाएँ घटित हुईं जिनसे भारत के नवयुवकों को भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। 1896 में अबीसीनिया के द्वारा इटली की पराजय तथा 1905 में जापान द्वारा रूस की पराजय इन दोनों घटनाओं ने भारतीय-राष्ट्रवाद को उभारने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उपर्युक्त कारणों से कांग्रेस के अंदर एक उग्रवादी गुट का उदय हुआ। यह गुट कांग्रेस की उदारवादी नीति में परिवर्तन चाहता था। इसे एक सीमा तक सफलता भी मिली। उदाहरणार्थ, 1905 में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में गोपाल कृष्ण गोखले ने बंग-भंग की भर्त्सना की तथा स्वदेश आंदोलन का समर्थन किया। किंतु उदारवादी इससे और आगे नहीं जा सकते थे। परिणाम स्वरूप कांग्रेस दो भागों में बँट गई। उग्रवादियों ने कांग्रेस छोड़ दी और कांग्रेस से बाहर अपना कार्यक्रम चलाया।

**क्रांतिकारियों की गतिविधियाँ**

देश का नवयुवक वर्ग उग्रवादियों से भी संतुष्ट नहीं था। उनका दृढ़ विश्वास था कि इन नीतियों से उन्हें स्वराज्य नहीं मिल सकता। वे अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पिस्तौल और बम में विश्वास करते थे। अतएव उन्होंने इटली और रूस की गुप्त सभाओं के आधार पर कई सभाएँ संगठित कीं। वे नवयुवकों को भर्ती कर, उन्हें शारीरिक व्यायाम की शिक्षा देते तथा शक्ति संप्रदाय की धार्मिक क्रियाओं से परिचित कराते थे। वे सेना के शिविरों से भी संबंध साधते थे तथा सैनिकों के मन में ब्रिटिश नौकरशाही के विरुद्ध घृणा का भाव भरते थे। ब्रिटिश अधिकारियों ने क्रांतियों को आतंकवादी घोषित कर उन्हें बदनाम करने का प्रयास किया। उन्हें आतंकवादी केवल इसी अर्थ में कहा गया था कि वे उन अंग्रेज अधिकारियों को आतंकित करते थे जो अत्यधिक दमनकारी कार्य करते थे तथा निरपराध जनता पर भीषण अत्याचार करने के दोषी थे। क्रांतिकारी उसी समय बदले की कार्यवाही करते थे जब कोई उनके राष्ट्रीय गौरव पर चोट करता था अथवा महिलाओं को अपमानित करता था। उनकी गतिविधियाँ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के

लिए शिक्षा के समान थीं। उनका उद्देश्य अत्युत्तम था। उनकी लोकतंत्र में आस्था थी। वे किसानों और मजदूरों का शासन स्थापित करना चाहते थे तथा सभी प्रकार की सामजिक एवं आर्थिक असमानताओं को दूर करना चाहते थे। बरिंदर कुमार घोष, भूपेंद्र नाथ दत्त, श्यामजी कृष्ण वर्मा, चापेकर बंधु, सावरकर बंधु, हरदयाल, भाई परमानंद, राम प्रसाद बिस्मिल, सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद तथा रास बिहारी घोष के नाम प्रमुख क्रांतिकारियों में गिने जाते हैं।

क्रांतिकारियों की गतिविधियों के परिणाम स्वरूप ब्रिटिश सरकार अत्यधिक भयभीत हो गई और इसका सामना करने के लिए उसने तीन उपायों – दमन, सुधार और फूट का सहारा लिया। दमन के द्वारा उसने क्रांतिकारियों पर पाश्विक अत्याचार किए। सुधार के अंतर्गत उसने संवैधानिक सुधारों जैसा मॉर्ले मिन्टो सुधार (1909 का भारतीय परिषद् अधिनियम), मांटेग्यू चेम्स फोर्ड सुधार (1919 का भारतीय शासन अधिनियम) और 1935 के भारतीय शासन अधिनियम बनाए। फूट के अंतर्गत उसने मुस्लिम लीग की स्थापना करने तथा सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली लागू करने जैसे उपयों का सहारा लिया।

### मुस्लिम संप्रदायवाद

जब 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तो इसे न केवल सत्ताधीशों का वरद् हस्त प्राप्त था अपितु जिस प्रांत में इसके अधिवेशन होते थे, वहाँ के गवर्नर उनकी बैठकों को अपनी उपस्थिति से सुशोभित करते थे। किंतु जब कांग्रेस ने राजनैतिक और आर्थिक सुधारों से संबंधित प्रस्तावों पर बल देना प्रारंभ कर दिया तो ब्रिटिश अधिकारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। वे अब कांग्रेस पर भी नाक भौं सिकोड़ने लगे। किंतु अधिकारियों के इस बदलते हुए रुख के बावजूद जनसाधारण में कांग्रेस का प्रभाव बढ़ने लगा। यह देखकर ब्रिटिश अधिकारी कांग्रेस के विरुद्ध षड़यंत्र रचने लगे। उन्होंने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाया और मुस्लिम समुदाय के नेताओं को कांग्रेस की गतिविधियों से दूर रहने के लिए प्रोत्साहित किया । इस संबंध में उन्हें सर सैयद अहमद खान और उनके अलीगढ़ आंदोलन से उत्साह प्राप्त हुआ जो मुस्लिम समुदाय और ब्रिटिश शासन के बीच संबंध स्थापित करने के लिए प्रयत्नरत थे। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि ब्रिटिश अधिकारी मुस्लिम समुदाय को शक की निगाह से देखते थे। उनकी मान्यता थी कि 1857 का विद्रोह मुख्यतया मुस्लिम समुदाय की देन थी क्योंकि ब्रिटिश शासन ने मुगल शासकों से सत्ता छीनी थी। ब्रिटिश शासकों के लिए यह एक स्वर्णिम अवसर था। उन्होंने सर सैयद अहमद खान तथा उसके द्वारा स्थापित एंग्लो इंडियन मोहंमेडन कालेज अलीगढ़, के अधिकारियों को प्रोत्साहित किया कि वे मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था करने की माँग शासन के सम्मुख रखें। तदनुसार आगा खाँ के नेतृत्व में एक शिष्ट मंडल तत्कालीन गवर्नर जनरल से मिला और उनसे माँग की कि प्रस्तावित संवैधानिक सुधारों में मुसलमानों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली स्थापित करने की व्यवस्था की जाए। गवर्नर जनरल का रुख उनकी माँगों के प्रति सहानुभूति मूलक था।

*अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का उदय :* गवर्नर जनरल से मिलने वाले मुस्लिम शिष्ट मंडल की सफलता ने मुसलमानों के लिए एक अलग से राजनीतिक संगठन बनाने की भावना को प्रोत्साहित किया।

तदनुसार 30 दिसंबर 1906 को मुस्लिम लीग की स्थापना की गई जिसके उद्देश्य थे - मुसलमानों के मन में ब्रिटिश शासन के प्रति भक्ति-भाव भरना तथा उनके कार्यों से उत्पन्न किसी भी शक की संभावना को समाप्त करना, भारत के मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों की रक्षा करना तथा उनमें अभिवृद्धि करना और अपनी आवश्यकताओं तथा अभिलाषाओं को विनम्रता पूर्वक शासन के सम्मुख रखना एवं उपर्युक्त उद्देश्यों को हानि पहुँचाए बिना मुसलमानों के मन से अन्य समुदायों के प्रति विद्वेष की भावना को समाप्त करना।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि लीग का मुख्य उद्देश्य कांग्रेस विरोधी तथा ब्रिटिश समर्थक था। यह विधान परिषदों में मुसलमानों के पृथक प्रतिनिधित्व तथा सरकारी नौकरियों में प्रभावशाली प्रतिनिधित्व देने के पक्ष में थी।

*मुस्लिम लीग की नीति में परिवर्तन :* मुस्लिम लीग समूचे मुस्लिम समुदाय का समर्थन प्राप्त करने में असमर्थ रही। जिन्ना, मौलाना मोहम्मद अली तथा मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे प्रभावशाली नेता लीग के सांप्रदायिक स्वरूप से सहमत नहीं थे। इन प्रतिष्ठित मुस्लिम नेताओं के कारण लीग को अपने संविधान में संशोधन कर इसके उद्देश्यों और लक्ष्यों में परिवर्तन करना पड़ा। मुस्लिम लीग अपने कट्टरपंथी स्वरूप को छोड़ कर कांग्रेस की विचारधारा की तरफ झुकने लगी। अब इसने दोनों प्रमुख समुदायों के बीच सौहार्द स्थापित करने तथा ब्रिटिश शासन की छत्रछाया में स्वराज्य प्राप्ति को अपना लक्ष्य बना लिया। कांग्रेस की ओर लीग के झुकाव का एक दूसरा प्रमुख कारण यह भी था कि प्रथम विश्वयुद्ध में टर्की जर्मनी के साथ था, जो ब्रिटेन के विरुद्ध युद्धरत था। भारतीय मुसलमान टर्की के सम्राट को अपना खलीफा अर्थात् धर्म गुरू मानते थे। अतः वे ब्रिटेन को एक शत्रु देश मानने लगे थे। इस प्रकार लीग के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ा। कांग्रेस और लीग दोनों का वार्षिक अधिवेशन एक ही स्थान अर्थात् लखनऊ में हुआ और दोनों ने युद्धोपरांत शासकीय सुधारों की एक संयुक्त योजना को स्वीकृति दी, जिसे कांग्रेस लीग योजना अथवा लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है।

*खिलाफत पर मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण :* प्रथम विश्व युद्ध में टर्की का सुल्तान जर्मनी के साथ था। भारतीय मुसलमानों को यह डर था कि यदि युद्ध में जर्मनी और उसके मित्र राष्ट्रों की पराजय हो जाएगी तो टर्की का विघटन कर दिया जाएगा। चूँकि टर्की का सुल्तान मुसलमानों का खलीफा था, इसलिए भारतीय मुसलमान युद्ध में ब्रिटेन के विरोधी थे। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् मुसलमानों की शंका सत्य सिद्ध हुई। टर्की के साम्राज्य का विघटन कर दिया गया जिससे मुसलमानों के मन में अत्यधिक असंतोष उत्पन्न हो गया। चूँकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस खिलाफत के सवाल पर मुसलमानों के साथ थी और उसने इसे अपने असहयोग आंदोलन का एक अंग बनाया, अतः मुस्लिम समुदाय कांग्रेस के और अधिक नजदीक आ गया। किंतु यह सहयोग बहुत अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सका। मलाबार जिले में हुए सांप्रदायिक झगड़ों ने समूचे वातावरण को विषाक्त बना दिया। जब चौरी चौरा में हुई दुर्घटना के कारण असहयोग आंदोलन समाप्त कर दिया, तब भारतीय राजनीति में सांप्रदायिक शक्तियाँ अधिक सक्रिय हो गईं।

*साइमन कमीशन के प्रति मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण :* 1919 के भारतीय शासन अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि 10 वर्ष की अवधि के उपरांत अधिनियम के कार्यान्वित स्वरूप की जाँच पड़ताल की जाएगी। किंतु सरकार ने निर्धारित अवधि से दो वर्ष पूर्व ही एक आयोग, *साइमन कमीशन*, की नियुक्ति कर दी। चूँकि इस आयोग के सभी सदस्य अंग्रेज थे, अतः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का यह मानना था कि यह भारतीय जनता का अपमान है। अतः उसने निश्चय किया कि आयोग का बहिष्कार किया जाए, किंतु मुस्लिम लीग में इस संबंध में मतभेद थे। एक पक्ष आयोग से सहयोग करने के पक्ष में था तो दूसरा पक्ष उसके सर्वथा विरुद्ध था।

*नेहरू रिपोर्ट पर मुस्लिम लीग का दृष्टिकोण :* 1928 में एक सर्वदलीय सम्मेलन हुआ जिसमें भावी भारतीय राजनैतिक व्यवस्था से संबंधित संविधान का निर्माण करने के लिए मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति स्थापित की गई। इस समिति की रिपोर्ट, जिसे नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है, में यह सुझाव दिया गया कि विधान मंडलों में मुस्लिम प्रतिनिधियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था कर दी जाए, किंतु निर्वाचन प्रणाली संयुक्त रखी जाए। मुस्लिम लीग में इस रिपोर्ट के संबंध में मतभेद थे। एक पक्ष रिपोर्ट का समर्थन करता था, जब कि दूसरा पक्ष इसके विरुद्ध था, क्योंकि इसमें संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था की गई थी। लीग में रिपोर्ट विरोधियों का बाहुल्य था।

*जिन्ना के चौदह सूत्र :* जिन्ना '*नेहरू रिपोर्ट*' के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने भारतीय राजनैतिक समस्या के समाधान के लिए एक सूत्रीय योजना प्रस्तुत की। उनके मतानुसार इस योजना में जो माँगें रखी गई थीं, उनसे कम पर कोई समाधान नहीं हो सकता। ये माँगें मुस्लिम लीग के सम्मुख प्रस्तुत की गईं तथा लीग ने उन्हें स्वीकार कर लिया। इन माँगों का संक्षिप्त सार निम्नानुसार है : स्वतंत्र भारत के लिए जो संविधान बनाया जाए, वह संघात्मक हो तथा उसमें अवशिष्ट शक्तियाँ प्रांतों में सन्निहित हों, समस्त विधान सभाओं और स्थानीय संस्थाओं में अल्प संख्यकों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो,केंद्रीय विधान सभा में एक तिहाई संख्या अल्प संख्यकों के लिए आरक्षित हो, समस्त समुदायों के लिए प्रतिनिधित्व का आधार पृथक निर्वाचन प्रणाली हो, किंतु प्रत्येक समुदाय को यह अधिकार प्राप्त हों कि वह पृथक निर्वाचन प्रणाली के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार कर ले। किसी भी विधान मंडल अथवा निर्वाचित संस्था को कोई भी ऐसा विधेयक अथवा प्रस्ताव पारित करने का अधिकार प्राप्त न हो, जिसका विरोध उस समुदाय के तीन चौथाई सदस्य इस आधार पर करें कि वह उनके हितों के लिए हानिकारक है, समस्त सरकारी नौकरियों में, कार्य कुशलता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, मुसलमानों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया जाए, मुस्लिम संस्कृति, धर्म, भाषा, शिक्षा, विधियों तथा धार्मिक संस्थाओं की रक्षा एवं प्रोत्साहन के लिए पर्याप्त सुरक्षा एवं राजकीय सहायता उपलब्ध की जाए, केंद्रीय एवं प्रांतीय मंत्रिमंडलों में कम से कम एक तिहाई सदस्य मुस्लिम समुदाय से लिए जाएँ और भारतीय संघ की इकाईयों की सहमति के बिना केंद्रीय विधान सभा द्वारा संविधान में कोई संशोधन न किया जाए।

*पाकिस्तान के लिए लीग की माँग :* 1930 में मोहम्मद इकबाल ने सर्वप्रथम पाकिस्तान संबंधी धारणा प्रस्तुत

की। उसने पश्चिमोत्तर भारत में एक सुसंगठित मुस्लिम राज्य की कल्पना की। किंतु इसको सुनिश्चित स्वरूप देने का श्रेय रहमत अली को जाता है। मार्च 1940 में अपने लाहौर अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि मुसलमानों को ऐसी कोई संवैधानिक योजना स्वीकार नहीं होगी जो निम्नांकित मूल सिद्धांत पर आधारित न हो। आवश्यक हेर फेर के साथ भारत के भौगोलिक क्षेत्रों को इस प्रकार पुनर्गठित किया जाए कि जिन क्षेत्रों में मुसलमान संख्या की दृष्टि से बहुलतम में हो उन्हें एक स्वतंत्र राज्य का स्वरूप दिया जा सके। लीग ने यह प्रस्ताव भी पास किया कि भारत छोड़ने से पूर्व ब्रिटिश सरकार भारत का विभाजन करके भारतीय संघ और पाकिस्तान का निर्माण कर दे। लीग की माँग का आधार उसका *'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत'* था। इस सिद्धांत के अनुसार हिंदू और मुसलमान दो समुदाय नहीं, वरन दो राष्ट्र हैं।

1942 में जब कांग्रेस ने *'भारत छोड़ो'* आंदोलन चलाया तो मुस्लिम लीग ने उसका समर्थन करने के बजाय उसको कुचलने में शासन का साथ भी दिया। 1946 में जब आम चुनाव हुए तो लीग को अधिकांश मुस्लिम स्थानों पर विजय प्राप्त हुई। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि 1937 के चुनाव में मुस्लिम लीग को ऐसी सफलता नहीं मिली थी। अपनी इस भारी सफलता से उत्साहित होकर मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान के निर्माण के लिए अपना आंदोलन उग्र कर दिया। जब मंत्रि-मंडलीय योजना में पाकिस्तान निर्माण की बात स्वीकार नहीं की गई तो मुस्लिम लीग ने 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' का अवलंबन लिया। इसके परिणाम स्वरूप देश भर में सांप्रदायिक उपद्रव भड़क उठे और अराजकता की ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि कांग्रेस ने, जो विभाजन के बिल्कुल विरुद्ध थी, माउंट बेटन योजना को स्वीकार कर लिया, जिसके अंतर्गत भारत को भारत और पाकिस्तान, दो अधिराज्यों में विभक्त कर दिया गया।

### असहयोग आंदोलन (1920-22)

1920 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध असहयोग आंदोलन छेड़ने का निश्चय किया। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में कई घटनाएँ एवं कारण निहित थे।

*जनता में असंतोष और निराशा की भावना :* 1914-18 के प्रथम विश्व युद्ध में भारतीय जनता ने जन और धन दोनों प्रकार से ब्रिटिश शासन की सहायता की। युद्ध के उपरांत भारतीय जनता यह आशा करती थी कि उसे भी उसके अधिकार प्राप्त होंगे तथा भारत में लोकतंत्र का उदय होगा। किंतु इसके विपरीत, उनको द्वैध शासन मिला, जिसके अंतर्गत वास्तविक सत्ता ऐसे पार्षदों को प्राप्त हुई, जो विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे तथा उत्तरदायी मंत्रियों को वो विभाग मिले, जिनमें सदैव धन की कमी रहती थी। इतना ही नहीं, युद्ध की समाप्ति से पूर्व ही सेना में छँटनी का काम शुरू हो गया था। इस छँटनी के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली बेकारी के कारण जो आंदोलन संभावित था उसको दबाने के लिए सरकार ने रौलट एक्ट लागू किया। इसके अंतर्गत सरकार किसी भी व्यक्ति को बिना कोई कारण बताए, कितनी भी अवधि तक, गिफ्तार रख सकती थी। रोलट एक्ट संबंध में जो नारा देशवासियों में लोकप्रिय हुआ वह था : 'न अपील, न वकील, न दलील'। इसके कारण जनता के मन में घोर असंतोष और निराशा की भीषण भावना घर कर गई।

*जलियाँवाला बाग काण्ड :* जब गाँधीजी ने रौलट अधिनियम के विरुद्ध देशव्यापी आंदोलन छेड़ा तो पंजाब की जनता ने अमृतसर के जलियाँवाला बाग में गाँधीजी के समर्थन में एक सार्वजनिक सभा आयोजित की। यह स्थान तीन ओर से मकानों की दीवालों से घिरा था तथा इसमें पहुँचने के लिए केवल एक प्रवेश-द्वार था, जो इतना सँकरा था कि इसमें से कोई भी गाड़ी नहीं गुजर सकती थी। मार्शल लॉ प्रशासक जनरल डायर ने पहले तो जनता को इसमें प्रवेश करने दिया तथा जब यह स्थान पूर्णतया भर गया तो वह 100 भारतीय और पचास ब्रिटिश सैनिकों के साथ सभा स्थल पर पहुँचा । उसने जनता की भीड़ को स्थान खाली करने की चेतावनी दिए बिना ही सैनिकों को गोली चलाने का आदेश दे दिया। जब सारी गोलियाँ समाप्त हो गयीं तभी गोली चलना बंद हुआ। इस हत्याकाण्ड के कारण भारतीय जनता में शासन के प्रति भीषण घृणा उत्पन्न हो गई।

*हंटर समिति रिपोर्ट :* लोकमत के दबाव के कारण भारत सरकार ने जलियाँवाला बाग काण्ड की जाँच के लिए हंटर समिति का गठन किया। इस समिति की रिपोर्ट आने से पूर्व ही एक अधिनियम पास कर दिया, जिसके द्वारा काण्ड से संबंधित अधिकारियों पर मुकदमा चलाने तथा उन्हें सजा देने से मुक्त कर दिया गया। जब समिति की रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो उसमें भी ब्रिटिश अधिकारियों के आचरण पर लीपापोती करने का प्रयास किया गया। इसके कारण भारतीय जनता के मन में विद्रोह की भावना भड़क उठी।

*खिलाफत का सवाल :* टर्की के सुल्तान को भारतीय मुसलमान अपना धर्म गुरू मानते थे। प्रथम विश्व युद्ध में टर्की जर्मनी और उसके मित्र राष्ट्रों के साथ था। भारतीय मुसलमानों के मन में यह शंका थी कि यदि जर्मनी और उसके मित्र राष्ट्रों की पराजय हो जाएगी तो टर्की का विघटन कर दिया जाएगा। भारतीय मुसलमानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश शासन ने यह आश्वासन दिया था कि खलीफा की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं किया जाएगा। किंतु युद्धोपरांत सरकार अपने वादे से मुकर गई तथा टर्की का विघटन कर दिया गया जो मुसलमानों के मन में असंतोष का कारण बना ।

उपर्युक्त कारणों के परिणाम स्वरूप कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन चलाया जो ब्रिटिश सरकार की नींव हिलाने में सफल हुआ।

*असहयोग आंदोलन से संबद्ध नीतियाँ और कार्यक्रम :* इस आंदोलन का उद्देश्य ब्रिटिश शासन से संबद्ध सभी राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं का बहिष्कार करना तथा उनके स्थान पर समानांतर राष्ट्रीय संस्थाएँ स्थापित करना था। इस आंदोलन के प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार थे – सरकार द्वारा प्रदत्त उपाधियों तथा सम्मान सूचक पदों का परित्याग करना एवं स्थानीय संस्थाओं में मनोनीत सदस्यों का उन संस्थाओं से त्यागपत्र देना, शासकीय और अर्ध शासकीय शिक्षण संस्थाओं का बहिष्कार करना तथा उनके स्थान पर समानांतर राष्ट्रीय शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करना, नवीन विधान परिषदों के निर्वाचन का बहिष्कार करना तथा मतदाताओं द्वारा मतदान से इंकार करना, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना तथा स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग करना, सरकारी दरबारों में सम्मिलित होने से इंकार करना, वकीलों तथा विवाद ग्रस्त पक्षों द्वारा ब्रिटिश न्यायालयों का बहिष्कार करना तथा उनके स्थान पर विवादों को

के साथ हरी झंडी दिखला दी कि वे कांग्रेस संगठन के अंग के रूप में चुनाव लड़ें।

*स्वराज पार्टी के उद्देश्य एवं कार्यक्रम :* स्वराज पार्टी चुनाव के माध्यम से विधान परिषदों में पहुँचकर, वहाँ से शासन के साथ असहयोग करना चाहती थी। यदि पार्टी को विधान परिषदों में बहुमत मिल जाता तो वह शासकीय विधेयकों को अस्वीकार कर देती ताकि गवर्नरों को प्रमाणीकरण संबंधी अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करने के लिए बाध्य होना पड़ता। इसी प्रकार, वह शासन के द्वारा प्रस्तुत बजट को अस्वीकार कर देती ताकि गवर्नरों को पुनःप्रतिष्ठा संबंधी अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग करने के लिए यह सिद्ध करना आसान हो जाता कि 1919 का भारतीय शासन अधिनियम अलोकतांत्रिक व्यवस्थाओं से परिपूर्ण है। यदि पार्टी को विधान परिषदों में बहुमत न मिलता तो वह शासकीय विधेयकों और बजट को पास करने में अड़ंगे डालती। उसकी मान्यता थी कि उसकी ऐसी गतिविधियों से उदारवादी और प्रतिक्रियावादी शासन के साथ सहयोग करने की अपनी नीतियों में विफल हो जाएँगे।

*स्वराज पार्टी के कार्य एवं सफलता :* पार्टी ने 1923 का चुनाव लड़ा और उसे केंद्रीय विधान सभा तथा बंगाल और मध्य प्रदेश की विधान परिषदों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो गया। अन्य कई प्रांतों में उसे बहुमत तो नहीं मिला किंतु वह एक मजबूत विपक्ष के रूप में उभरी। मोती लाल नेहरू और सी. आर. दास के नेतृत्व में पार्टी ने केंद्रीय विधान सभा तथा प्रांतीय विधान परिषदों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई केंद्रीय विधान सभा में अन्य समूहों के साथ मिलकर पार्टी ने विट्ठल भाई पटेल को सभाध्यक्ष पद दिलाने में सफलता पाई। पार्टी की गतिविधियों के परिणामस्वरूप कांग्रेस जनों को एक अच्छा परिवर्तन मिला और कांग्रेस जनता की निगाहों में बनी रही।

## साइमन कमीशन और उसकी रिपोर्ट

1919 के भारतीय शासन अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि 10 वर्ष के अंतराल के बाद अधिनियम के कार्यान्वित स्वरूप की जाँच की जाए। किंतु शासन ने इस कालावधि के दो वर्ष पूर्व ही साइमन कमीशन की नियुक्ति कर दी। चूँकि इस कमीशन के सभी सदस्य अंग्रेज थे अतः कांग्रेस ने इसे भारतीय जनता के लिए अपमान जनक माना और इसके बहिष्कार का निर्णय लिया।

कमीशन से कहा गया था कि वह 1919 के भारतीय शासन अधिनियम के व्यावहारिक स्वरूप की जाँच करे तथा पता लगाए कि द्वैध शासन कहाँ तक सफल अथवा असफल हुआ। उसे यह पता लगाने के लिए भी कहा गया कि व्यवहार में प्रतिनिधि मूलक संस्थाएँ कहाँ तक सफल हुईं तथा उन्हें उत्तरदायी शासन की ओर अग्रसर करना उचित होगा अथवा नहीं।

जब कमीशन 7 फरवरी 1928 को बंबई पहुँचा तो उसके खिलाफ प्रदर्शन किए गए और काले झंडे दिखाए गए। कमीशन जहाँ पहुँचा सब जगह उसके साथ यही व्यवहार हुआ। देश भर में व्याप्त असंतोष को देखते हुए सरकार ने फैसला किया कि केंद्रीय और प्रांतीय विधान मंडलों द्वारा निर्वाचित समितियाँ भी कमीशन से संबद्ध रहेंगी। किंतु जनता इससे भी संतुष्ट नहीं हुई, तब भी कमीशन ने मई 1930 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी प्रमुख संस्तुतियाँ इस प्रकार थीं : प्रांतों में द्वैध शासन की समाप्ति तथा

प्रांतीय स्वायत्तता का शुभारंभ, गवर्नरों और गवर्नर जनरल को विशेष शक्तियाँ प्रदान की जाएँ, मताधिकार का विस्तार इस प्रकार किया जाए कि जनता के 10 से 15 प्रतिशत लोगों को मत देने का अधिकार प्राप्त हो जाए, सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली तथा अल्प संख्यकों का विशेष प्रतिनिधित्व कायम रखा जाए, केंद्र में द्वैध शासन का प्रारंभ किया जाए, कमीशन ने सुझाव दिया कि केंद्रीय विधान मंडल को संघीय सिद्धांत पर पुनर्गठित किया जाए जिसमें सभी प्रांतों का तथा उन देशी रियासतों का प्रतिनिधित्व हो, जो प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने के लिए सहमत हो जाएँ तथा संघीय विधान मंडल के दोनों सदनों के चुनाव परोक्ष रूप से हो। यद्यपि यह रिपोर्ट जनता को संतुष्ट न कर सकी तथा विभिन्न नेताओं ने इसकी बड़ी कटु आलोचना की तथापि यही 1935 के भारतीय शासन अधिनियम का आधार बनी।

### नेहरू कमेटी और उसकी रिपोर्ट

जब साइमन कमीशन ने यह चुनौती दी कि भारतीय नेता एक ऐसा संविधान बनाकर दिखाएँ जो सब दलों को स्वीकार्य हो तो अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा फरवरी 1928 में एक सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया। इस सम्मेलन में 29 राजनैतिक दलों ने भाग लिया। सम्मेलन ने मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की जिसे संविधान बनाने का काम सौंपा गया।

कमेटी द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियाँ निम्नानुसार हैं : 1. तात्कालिक लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य होना चाहिए तथा शासन को पूर्णतया उत्तरदायी बनाना चाहिए 2. भावी संविधान संघात्मक होना चाहिए जिसमें प्रांतों को यथासंभव अधिक से अधिक स्वायत्तता दी जानी चाहिए, 3. सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर देना चाहिए किंतु अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए, 4. सर्वसाधारण जनता की संप्रभुता को मान्यता मिलनी चाहिए, 5. संसद द्वि सदनीय होनी चाहिए जिसका प्रथम सदन, प्रतिनिधि सदन, पूर्ण वयस्क मताधिकार के आधार पर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होना चाहिए तथा द्वितीय सदन, सीनेट, परोक्ष रूप से निर्वाचित किया जाना चाहिए, 6. गवर्नर जनरल को संविधानानुसार काम करना चाहिए तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् में एक प्रधानमंत्री एवं 6 मंत्री होने चाहिए जिसे संविधान की व्याख्या करने तथा प्रांतों के बीच के विवादों को निपटाने की शक्तियाँ प्राप्त हों, इसके निर्णय के विरुद्ध प्रीवीकौंसिल में अपील की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

यद्यपि इस रिपोर्ट को सर्वदलीय सम्मेलन के लखनऊ अधिवेशन में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया तथापि जब इसका बारीकी से अध्ययन किया गया तो लगभग सभी दलों में इसको लेकर मतभेद उत्पन्न हो गए। कांग्रेस ने इसे इस शर्त पर स्वीकार किया कि उसे 31 दिसंबर 1929 तक पूर्ण रूप से, बिना किसी हेर फेर के स्वीकार कर लिया जाए। यदि उक्त तारीख तक इसे स्वीकार नहीं किया जाएगा तो कांग्रेस अहिंसक असहयोग आंदोलन शुरू कर देगी तथा अपना लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर देगी।

### सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930-32)

साइमन कमीशन से संबंधित शासकीय क्रियाकलापों से कांग्रेस पूर्णतया असंतुष्ट थी। वह शासन के उस निर्णय से भी प्रसन्न नहीं थी जिसके द्वारा नेहरू कमेटी की रिपोर्ट को अस्वीकार कर दिया गया।

गुजरात के किसानों में प्रांतीय सरकार के स्वेच्छाचारी शासन से अत्यधिक असंतोष, जिसके खिलाफ सरदार वल्लभ भाई पटेल आंदोलन चला रहे थे। इसी प्रकार, बिहार में भी प्रांतीय सरकार की जबरदस्ती के कारण असंतोष था। जब कम्युनिस्ट नेताओं ने किसानों और मजदूरों का नेतृत्व संभाल लिया तो सरकार ने उन्हें जेलों में बंद कर दिया तथा उन पर षडयंत्र के मुकदमे चलाए गए। परिणामस्वरूप गाँधी जी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक नए लोकप्रिय आंदोलन चलाने की आवश्यकता समझी। तदनुसार 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ किया गया।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में 1919 के असहयोग आंदोलन के समूचे कार्यक्रम को अपना लिया गया। इसके अतिरिक्त नमक कानून तोड़ने का एक नया कार्यक्रम और आरंभ किया गया। इस कार्यक्रम का प्रारंभ गाँधीजी ने मार्च 1930 में सुप्रसिद्ध डाँडी यात्रा से किया। इस यात्रा में गाँधीजी ने साबरमती आश्रम से समुद्र तक की 200 मील लंबी यात्रा 24 दिनों में पैदल चल कर पूर्ण की। इस डाँडी यात्रा के दौरान सैकड़ों कांग्रेस कार्यकर्ता गाँधीजी के साथ यात्रा में सम्मिलित हो गए। इस यात्रा के कारण भारत की सर्व साधारण जनता में एक नवीन जागृति उत्पन्न हुई। प्रारंभ में भारत सरकार ने इस आंदोलन को गंभीरता से नहीं लिया, किंतु कालांतर में जब यह यात्रा बहुत अधिक लोकप्रिय हो गई तो सरकार ने दमन का सहारा लिया। परिणाम स्वरूप हजारों कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने सत्याग्रह का अवलंबन लिया और भारत की सभी जेलें सत्याग्रहियों से भर गईं।

*प्रथम गोलमेज सम्मेलन :* जहाँ एक ओर कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय भाग ले रही थी, वहीं दूसरी ओर इंग्लैंड में भी बहुत हलचल मची हुई थी। साइमन कमीशन की संस्तुति के अनुसार 1930 में एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया गया। इससे भावी राजनैतिक सुधारों से संबंधित योजना की विवेचना करने के लिए सभी राजनैतिक दलों तथा कुछ प्रमुख भारतीय नेताओं को आमंत्रित किया गया। कांग्रेस ने इस सम्मेलन का बहिष्कार किया किंतु सम्मेलन में कुछ महत्त्वपूर्ण राजनैतिक निर्णय लिए गए और उन पर विस्तृत रूपरेखा तैयार करने के लिए विभिन्न समितियाँ नियुक्त की गईं।

*गाँधी-इरविन समझौता 1931 और द्वितीय गोलमेज सम्मेलन :* प्रथम गोलमेज सम्मेलन के उपरांत द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के लिए गाँधीजी और कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किए गए। गाँधीजी और लार्ड इरविन के बीच पत्र व्यवहार हुआ। परिणामस्वरूप दोनों के बीच एक समझौता हुआ। कांग्रेस ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित करने का निर्णय लिया। सरकार ने दमनकारी कदमों को वापस लेने तथा सत्याग्रहियों को मुक्त करने का वादा किया। कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया, जिसमें गाँधीजी ने कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किया। यद्यपि गाँधीजी की उपस्थिति से लोगों में काफी उत्साह था तथापि सम्मेलन के सम्मुख, विशेष कर अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व पर, काफी गंभीर मतभेद उभर कर आए। बी. आर. अंबेडर अनुसूचित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन तथा प्रतिनिधित्व पर ज़ोर देते रहे किंतु गांधीजी इससे सहमत नहीं थे। अंततोगत्वा यह मामला इंग्लैंड के प्रधानमंत्री के निर्णय पर छोड़ दिया गया।

*सांप्रदायिक निर्णय एवं पूना समझौता :* जब इंग्लैंड के प्रधानमंत्री ने अनुसूचित जातियों के पृथक निर्वाचन एवं प्रतिनिधित्व के पक्ष में निर्णय दिया तो गाँधीजी ने

इसका विरोध किया तथा वे आमरण अनशन पर बैठ गए। समूचा राष्ट्र इससे चिंतित हो उठा। अंबेडकर और गाँधीजी के बीच समझौते के प्रयास किए गए और इसका परिणाम पूना समझौता के रूप में हुआ। इस समझौते के अनुसार गांधीजी और अंबेडकर संयुक्त निर्वाचन पर सहमत हो गए, किंतु इसके लिए प्रांतीय विधान मंडल में, सांप्रदायिक निर्णय में दी गई संख्या से दुगुने स्थान अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित किए गए। अनुसूचित जातियों के जितने लोगों के नाम आम चुनाव की मतदाता सूची में थे, वे एक लघु निर्वाचन मंडल के रूप में गठित किए गए। प्रत्येक सुरक्षित स्थान के लिए लघु निर्वाचक मंडल द्वारा चार प्रत्याशियों का एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्वाचन होता था तथा उनमें से एक को संयुक्त निर्वाचन मंडल द्वारा निर्वाचित किया जाता था। इस समझौते के बाद ही गाँधी जी ने अपना अनशन तोड़ा।

*सविनय अवज्ञा आंदोलन का पुनः प्रारंभ 1932-34 :* इसी बीच गाँधीजी ने द्वितीय गोलमेज़ सम्मेलन से लौटने के बाद सविनय अवज्ञा आंदोलन पुनः प्रारंभ कर दिया। जहाँ एक ओर सत्याग्रही आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग ले रहे थे, वहीं दूसरी ओर सरकार दमन में व्यस्त थी। सांप्रदायिक निर्णय के परिणाम स्वरूप जब गाँधी जी अनशन पर बैठे तो आंदोलन की गति कुछ मंद पड़ गई। गाँधीजी ने अस्पृश्यता निवारण की ओर अपना ध्यान केंद्रित कर दिया। उनके अनुयायियों ने भी उनका अनुकरण प्रारंभ कर दिया। जब 1934 में बिहार में अकाल पड़ा तो कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने अकाल राहत कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया। इस प्रकार धीमे-धीमे सविनय अवज्ञा आंदोलन ठंडा पड़ गया।

## भारत-छोड़ो आंदोलन 1942

1942 में ब्रिटिश सरकार ने सर स्टेफर्ड क्रिप्स को भारतीय समस्या के हल के लिए भारत भेजा। उन्होंने कुछ सुझाव प्रस्तुत किए जो भारत के प्रमुख राजनैतिक दलों को स्वीकार्य नहीं थे। क्रिप्स की योजना की असफलता पर अधिकांश भारतीयों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उनकी यह धारणा थी कि क्रिप्स को मूलरूप से इसलिए भारत भेजा गया था कि चीन और अमेरिका द्वारा ब्रिटेन पर भारतीयों की राष्ट्रीय माँगों को मनवाने का जो दबाव पड़ रहा था उसका प्रतिकार हो सके। ब्रिटिश सरकार विश्व को यह दिखाना चाहती थी कि भारत में सत्ता हस्तांतरण इसलिए संभव नहीं था कि उनमें किसी भी विषय पर कोई एकता नहीं थी। इस असफलता के परिणाम स्वरूप भारतीयों के मन में तीव्र क्षोभ उत्पन्न हो गया। देश का वातावरण निराशाजनक था तथा यदि राष्ट्रीय नेता हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते तो यह आत्मघाती होता। अतः गाँधीजी ने 'हरिजन' में एक लेख के माध्यम से 'भारत छोड़ो' से संबंधित अपने विचार देश के सम्मुख रखे।

*भारत-छोड़ो प्रस्ताव :* कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने गाँधीजी के इस विचार पर अपनी सहमति दे दी तथा भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश शासन से माँग की गई कि वह परिणामों की चिंता किए बिना तत्काल बिना शर्त और पूर्ण रूप से भारत छोड़ दे। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने आगामी संघर्ष का नेतृत्व तथा पथ प्रदर्शन करने का गाँधीजी को आह्वान किया।

8 अगस्त 1942 को यह प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सम्मुख स्वीकारार्थ रखा गया। इस प्रस्ताव पर बोलते हुए गाँधीजी ने कहा कि अब 'करो

या मरो' का समय आ गया है तथा वह भारतीय स्वतंत्रता के लिए उनके जीवन का अंतिम संघर्ष होगा।

यह प्रस्ताव 9 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पूर्ण अधिवेशन के सामने रखा जाने वाला था, किंतु इससे पूर्व ही 8 अगस्त 1942 की रात्रि में कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। इसके कारण आंदोलन में तीव्रता आ गई। नेतृत्व के अभाव में जनता ने हड़तालों, जुलूसों एवं सार्वजनिक सभाओं का सहारा लिया। जनता की इन गतिविधियों को बुरी तरह से कुचल दिया गया। इसके कारण जनता कुपित हो गई और कहीं कहीं इसने हिंसक रूप धारण कर लिया। कांग्रेस के अंतर्गत गठित और कांग्रेस के ही एक अंग, *कांग्रेस समाजवादी दल*, ने भारत छोड़ो प्रस्ताव की अपने ढंग से व्याख्या की तथा जनता के इस आक्रामक स्वरूप को और अधिक भड़काया। इसके जवाब में सरकार ने आतंकवादी शासन स्थापित कर दिया। परिणाम स्वरूप हज़ारों लोग जख्मी हुए, हजारों मारे गए तथा हजारों को गिरफ्तार किया गया। तीन महीनों में सरकार इस आंदोलन को कुचलने में सफल रही।

### आज़ाद हिंद फौज

जहाँ एक ओर भारतीय जनता '*भारत छोड़ो आंदोलन*' में सक्रिय रूप से भाग ले रही थी, वहीं दूसरी ओर भारत से बाहर भारत को स्वाधीनता दिलाने के लिए सुभाष चंद्र बोस तथा उनकी '*आज़ाद हिंद फौज*' अपने ढंग से सक्रिय थी। सुभाष चंद्र बोस एक ऐसे कांग्रेसी थे, जिनको कांग्रेस के अहिंसावादी कार्यक्रम में बहुत अधिक विश्वास नहीं था।

सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी वीर सावरकर के परामर्श से 1941 में वे भारत से छुप-छुपा कर जर्मनी पहुँच गए। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी रासबिहारी बोस के आमंत्रण पर वे आज़ाद हिंद फौज का नेतृत्व संभालने के लिए जापान पहुँच गए। इस फौज की स्थापना रासबिहारी बोस ने भारत को आज़ाद कराने के लिए की थी। 1943 में बोस ने स्वतंत्र भारत की एक अस्थायी सरकार की स्थापना की, जिसे जापान, जर्मनी, फिलिपाइंस कोरिया, चीन और आइरिश रिपब्लिक की सरकारों ने मान्यता प्रदान की। इसी बीच जापान ने अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों पर आक्रमण कर उन्हें अपने अधीन कर लिया। 1943 में जापान सरकार ने इस द्वीप समूह का शासन सुभाषचंद्र बोस को सौंप दिया। बोस ने इन दोनों को क्रमशः शहीद और स्वराज्य नए नाम दिए। 1944 में सुभाषचंद्र बोस ने पूर्वोत्तर भारत के कुछ भागों पर आक्रमण कर उन्हें ब्रिटिश चंगुल से मुक्त करा दिया। किंतु 1945 को जापान के हिरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर अणु बम गिराए गए, जिसके कारण जापान को भी झुकना पड़ा। इस समाचार को सुनकर सुभाष चंद्र बोस ने, जो उन दिनों बैंकॉक में थे, हवाई जहाज से टोकियो के लिए प्रस्थान किया। उनका विमान फॉरमोसा द्वितीय समूह पर दुर्घटनाग्रस्त हो गया तथा सुभाष चंद्र बोस का कोई अता पता नहीं मिला। युद्ध के उपरांत आज़ाद हिंद फौज, सहगल तथा कैप्टन ढिल्लों पर लालकिले में मुकदमा चलाया गया जिसमें अन्य वकीलों के साथ जवाहर लाल नेहरू ने भी आरोपियों की ओर से वकालत की। इसकी वजह से न केवल सर्व साधारण जनता वरन् अतिरक्षा सैनिकों के मन में भी इस मुकदमे के प्रति रुचि उत्पन्न हो गई तथा वे इन

स्वतंत्रता सैनिक अधिकारियों की मुक्ति के पक्ष में हो गए। इसके परिणाम स्वरूप ब्रिटिश शासन ने उन्हें मुक्त करना ही उचित समझा। इससे बदलते समय की आहट सुनाई पड़ती है तथा भारतीय फौज पर ब्रिटिश शासन की पकड़ ढीली होती दिखाई देती है।

**भारतीय वायुसेना तथा नौ सेना में विद्रोह 1946**

कुछ समय से भारतीय सैनिकों में अंग्रेज अधिकारियों के विरुद्ध कुछ कुलबुलाहट दिखाई पड़ रही थी। असंतोष इस सीमा तक बढ़ गया था कि 20 जनवरी 1946 को कराची में भारतीय वायुसेना के सैनिकों ने हड़ताल कर दी। कुछ दिनों में हड़ताल में सम्मिलित हुए, नौ सेना में इसका अनुकरण हुआ। नौ सेना के लगभग 5000 कर्मचारी 19 फरवरी 1946 को हड़ताल पर चले गए। वे लोग अपनी छाती पर आजाद हिंद फौज के तमगे लटकाए हुए थे। बंबई में हड़तालियों ने अंग्रेज अधिकारियों पर आक्रमण कर दिया। उन पर जब गोली चलायी गई तो उन्होंने गोली का जवाब गोली से दिया। तमाम अनुशासन समाप्त हो गया। यह ब्रिटिश शासन के लिए पर्याप्त संकेत था कि वह अधिक देर किए बिना शीघ्रातिशीघ्र भारत छोड़ दें।

## निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जब 15 अगस्त 1947 को अंग्रेज भारत से गए तो यह विभिन्न राष्ट्रीय संगठनों के प्रयासों का सामूहिक परिणाम था, जो 19वीं शताब्दी के मध्यकाल से कार्यरत थे। यद्यपि यह सत्य है कि इसका अधिकांश श्रेय अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को जाता है, जिसने इस दिशा में, विशेषकर भारतीय राजनीति में गाँधीजी के प्रवेश के उपरांत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया, तथापि कोई इस तथ्य से इंकार नहीं कर सकता कि उग्रवादियों, स्वराजवादियों, क्रांतिकारियों, आजाद हिंद फौज तथा वायुसेना एवं नौ सेना के विद्रोहों की भूमिका भी नगण्य नहीं कही जा सकती।

## राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत

हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने अपने व्यावहारिक आचरण से कुछ ऐसे आदर्श स्थापित किए, जिन्हें हम अपनी राष्ट्रीय थाती कह सकते हैं। ये आदर्श थे–

क. *शांति और अहिंसा :* भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन प्रधानतया शांतिपूर्ण और अहिंसक था। असहयोग, सविनय अवज्ञा और सत्याग्रह इसके प्रमुख साधन थे। हिंसा का सहारा लिए बिना विरोधी का मन जीतने का प्रयत्न किया जाता था।

ख. *लोकतंत्र :* प्रारंभ से ही हमारा नेतृत्व भारत में लोकतांत्रिक सुधारों की माँग करता आ रहा था। उन्हें पूर्ण वयस्क मताधिकार पर पूर्ण विश्वास था। वे जाति, मत (creed), वर्ण, लिंग, धर्म, प्रजाति तथा जन्म स्थान आदि में से किसी के भी आधार पर भेदभाव नहीं करते थे। वे मनुष्यों के अपरिहार्य मौलिक अधिकारों की माँगों का पूर्ण रूप से समर्थन करते थे।

ग. *पंथ निरपेक्षता :* हमारा नेतृत्व भारत को एक पंथ निरपेक्ष राष्ट्र बनाने के लिए प्रतिबद्ध था। किंतु उसकी पंथ निरपेक्षता की धारणा यूरोपीय देशों की धारणा से भिन्न थी। वह पंथ निरपेक्षता के धर्म विरोधी तथा अहस्तक्षेप वाले स्वरूप से सहमत नहीं थी। वह सब धर्मों का समान रूप से सम्मान करता था तथा उसकी पंथ निरपेक्षता का आदर्श था *'सर्व धर्म समभाव'*।

घ. *राष्ट्रीय एकीकरण :* अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व भारत के लोग सौहार्द भाव से रहते थे।

ब्रिटिश शासन ने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति का अवलंबन कर यहाँ सांप्रदायिकता के बीज बोए। हमारे नेता बिना किसी भेदभाव के सभी लोगों को समानता की दृष्टि से देखते थे। वे समाज के सभी समूहों के राष्ट्रीय एकीकरण पर बल देते थे।

ङ. *हरिजनों का उत्थान :* हमारा नेतृत्व सामाजिक समानता पर बल देता था। वह सामाजिक भेदभाव में विश्वास नहीं करता था। *'अस्पृश्यता निवारण'* कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। गाँधी जी ने *'अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ'* नामक संस्था स्थापित की तथा *'हरिजन'* नामक पत्र के माध्यम से वे अनुसूचित जातियों के हित में प्रचार करते थे। जीवन के संध्याकाल में वे हरिजन बस्तियों में ठहरा करते थे, ताकि सभी देशवासी हरिजनोत्थान में उनका अनुकरण कर सकें।

च. *महिला मुक्ति :* भारतीय राजनीति में गाँधीजी के प्रवेश करते ही हमारे नेता महिला मुक्ति आंदोलन के कट्टर हिमायती बन गए। पर्दे में रहने वाली भारतीय महिलाओं को गाँधीजी ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन से जोड़ा और हजारों भारतीय महिलाओं ने स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय सहयोग दिया। वे जेल गईं तथा उन्होंने शासकों की लाठियों और गोलियों तक का सामना किया।

छ. *कुटीर उद्योग धंधों को प्रोत्साहन :* चूँकि हमारे नेता गरीब किसानों और पिछड़े हुए लोगों के हितों के समर्थक थे, इसलिए वे कुटीर उद्योग धंधों की स्थापना तथा उनके प्रोत्साहन का समर्थन करते थे। गाँधीजी का चरखा कुटीर उद्योग धंधों का एक प्रतीक चिह्न बन गया। ग्रामोद्योग और खादी का उपयोग हमारी स्वाधीनता संग्राम और गाँधी युग की एक थाती है।

ज. *ग्रामोत्थान :* चूँकि भारत प्रधानतया गाँवों का देश है, अतः हमारे नेता ग्रामोत्थान को अनिवार्य मानते थे। इसे कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया था।

झ. *प्रजातिगत भेदभाव का विरोध :* हमारे नेता प्रजातिगत किसी भी प्रकार के भेदभाव के कट्टर विरोधी थे। जो भी देश इस प्रकार के भेदभाव का विरोध करता था, उसका हमारे नेता समर्थन करते थे।

ञ. *साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध :* हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद पर सदैव एक दृढ़ नीति अपनाई। वे किसी भी प्रकार के विदेशी शासन के विस्तार का कट्टर विरोध करते थे तथा उन सभी देशों की जनता का समर्थन करते थे जो साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी शासन से मुक्ति के लिए प्रयासरत थी।

ट. *अनेकता में एकता :* हमारे नेता सदैव राष्ट्रीय एकता के कट्टर समर्थक थे। किंतु वे विभिन्नताओं को सौंदर्य का आवश्यक अंग मानते थे। उनका विभिन्नत्व में अभिन्नत्व के सिद्धांत में विश्वास था। इसी आधार पर उन्होंने संघीय शासन प्रणाली का समर्थन किया।

## अभ्यास

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के कारणों का उल्लेख कीजिए।
2. उदारवादियों और उग्रवादियों की नीतियों में विभेद कीजिए।
3. भारत में उग्रवाद के विकास के क्या कारण थे?
4. भारत में संप्रदायवाद के उत्थान के कारणों का उल्लेख कीजिए।
5. असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम पर प्रकाश डालिए।
6. स्वराज पार्टी की क्या नीतियाँ और कार्यक्रम थे? वह अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुई?
7. गाँधीजी द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा आंदोलन 1930-32 का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
8. 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन का विवरण दीजिए।
9. भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन से विरासत के रूप में मिले मूल्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
10. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए।
    क. साइमन कमीशन और उसकी रिपोर्ट।
    ख. नेहरू कमेटी और उसकी रिपोर्ट।
    ग. 'फूट डालो और शासन करो' की नीति।
    घ. सांप्रदायिक निर्वाचक मंडल।

अध्याय 3

# भारतीय संविधान : प्रस्तावना, मुख्य विशेषताएँ तथा भारतीय संघ

## भारतीय संविधान की प्रस्तावना

प्रस्तावना का शाब्दिक अर्थ होता है भूमिका अथवा प्रारंभिक परिचय। भारतीय संविधान की प्रस्तावना का संबंध उसके उद्देश्यों, लक्ष्यों, आदर्शों तथा उसके आधारभूत सिद्धांतों से है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना का सीधा संबंध उस उद्देश्य प्रस्ताव से है जिसे संविधान सभा ने 22 जनवरी 1947 को पारित किया था। इस प्रस्ताव के प्रमुख प्रावधान हैं : यह संविधान संपूर्ण भारत वर्ष को एक स्वतंत्र और संप्रभुता संपन्न गणराज्य घोषित करने तथा उसके भावी शासन प्रबंध के लिए एक ऐसे संविधान का निर्माण करने का दृढ़ और पवित्र संकल्प लेती है,जिसमें स्वतंत्र और संप्रभुता संपन्न भारत और उसके विभिन्न भागों तथा शासन के अंगों की सत्ता का मूल स्रोत भारतीय जनता होगी, जिसमें भारत के सभी लोगों को सामाजिक , आर्थिक तथा राजनैतिक न्याय, प्रतिष्ठा, अवसर, और विधि के समक्ष समता, तथा सार्वजनिक नैतिकता के अधीन रहते हुए विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा, उपासना, व्यवसाय, संगठन तथा कार्य की स्वतंत्रता सुरक्षित होगी तथा जिसमें अल्प संख्यकों, पिछड़े वर्गों और जन जाति क्षेत्रों , दलितों तथा अन्य वर्गों की सुरक्षा के लिए समुचित साधन उपलब्ध होंगे।

संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार बी एन, राव ने उपर्युक्त प्रस्ताव के आधार पर प्रस्तावना का प्रारूप तैयार किया। संविधान की प्रारूप समिति ने इस प्रारूप पर विचार किया तथा इसमें आवश्यक संशोधन करके संविधान सभा के कार्यों के आखिरी चरण में इसे पारित किया ताकि यह संविधान के विभिन्न प्रावधानों के अनुरूप हो।

प्रस्तावना

हम, भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,
विचार, अभिव्यक्ति , विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में

व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता
और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए

दृढ़ संकल्प होकर *अपनी इस संविधान सभा में* आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को एतद्-द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

अब यदि हम इस प्रस्तावना का विश्लेषण करें तो पहली बात जो इसमें आती है वह है 'हम भारत के

लोग' इसका अर्थ यह हुआ कि यह प्रस्तावना भारत वर्ष के लोगों को एक संप्रभु शक्ति के रूप में घोषित करती है। हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं ने भारतीय जनता की संप्रभुता पर सदैव बल दिया था।

इस संविधान का निर्माण एक ऐसी संविधान सभा ने किया था जिसे भारतीय जनता ने प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित नहीं किया था। यथार्थ में, इसका निर्वाचन परोक्ष रूप से भारतीय प्रांतों की विधान सभाओं के द्वारा किया गया था। ये विधान सभाएँ स्वयं 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के अंतर्गत 1946 में निर्वाचित की गई थी। 1935 के अधिनियम के अंतर्गत मताधिकार बहुत कम लोगों तक सीमित था। देशी रियासतों को तो इससे भी कम प्रतिनिधित्व प्राप्त था। इन समस्त सीमाओं के बावजूद, संविधान सभा को हम जनता की वास्तविक प्रतिनिधि संस्था कह सकते हैं क्योंकि इसमें लगभग सभी विचार धाराओं का प्रतिनिधित्व था। ऐसा इसलिए संभव हुआ क्योंकि उस समय जो लोग सत्तारूढ़ थे, वे उदार हृदय थे। उन्होंने ऐसी व्यवस्था की कि संविधान सभा में भारतीय जनता के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व हो।

प्रस्तावना की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह भारत में एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की बात करती है। संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न से अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था से है जहाँ भारत वर्ष किसी भी आंतरिक अथवा बाह्य सत्ता से पूर्णतया स्वतंत्र हो। कुछ आलोचकों का यह मत है कि कॉमनवेल्थ की सदस्यता के कारण भारत की इस स्थिति में कुछ कमजोरी है किंतु यह बात सच नहीं है। कॉमनवेल्थ की मूल स्थिति में अब काफी परिवर्तन आ चुका है। अब यह विशुद्ध रूप से एक ऐच्छिक समुदाय है जिसके सदस्य स्वतंत्र एवं संप्रभु राज्य हैं।

समाजवादी एवं पंथ निरपेक्ष शब्द संविधान के 42वें संशोधन के द्वारा प्रस्तावना में सम्मिलित किए गए। समाजवादी शब्द का प्रयोग संविधान में समाजवादी दर्शन को सम्मिलित करने के लिए किया गया है। यहाँ उल्लेखनीय है कि संविधान सभा में जब के.टी. शाह ने इसी प्रयोजन का एक प्रस्ताव रखा था तो जवाहर लाल नेहरू ने यह कहकर इसका जोरदार विरोध किया था कि संविधान के दो अध्यायों, मौलिक अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्वों, में पहले से ही आर्थिक लोकतंत्र के सार तत्व की व्यवस्था कर दी गई है, तो फिर ऐसी शब्दावली का प्रयोग नहीं होना चाहिए जिसका भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न अर्थ निकालें।

इसी प्रकार, संविधान सभा में यह सुझाव भी आया था कि प्रस्तावना में पंथ निरपेक्षता का भी उल्लेख किया जाए। किंतु इसका भी यह कहकर विरोध किया गया कि इस शब्द का कोई एक निश्चित अर्थ नहीं है पर 1976 में देश के नेतृत्व ने इसे प्रस्तावना में रखना उचित समझा।

पंथ निरपेक्ष शब्द की जो व्याख्या भारतीय न्यायालयों में की गई है, उसके अनुसार पंथ निरपेक्षता का अर्थ धर्म के आधार पर भेदभाव का अभाव है तथा जहाँ सभी धर्मों को समान भाव से देखा जाए, वही पंथ निरपेक्षता है।

लोकतंत्र से अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था से है जहाँ सरकार जनता द्वारा निर्वाचित होती है तथा जो अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होती है। इसके अनुसार एक निश्चित अंतराल के बाद

निर्वाचन होते हैं तथा जनता को स्वतंत्रता पूर्वक तथा न्यायपूर्ण तरीके से मतदान का अधिकार प्राप्त होता है। इसका एक अर्थ यह भी है कि यहाँ विधि का शासन होगा तथा कोई भी स्वेच्छाचारिता पूर्वक आचरण नहीं कर सकेगा।

गणराज्य से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ राज्य के प्रमुख को निर्वाचन द्वारा पद प्राप्त होता है आनुवंशिकता के आधार पर नहीं।

प्रस्तावना का एक उद्देश्य यह भी है कि सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय की प्राप्ति हो। न्याय का सामान्य अर्थ यह है कि जहाँ किसी भी प्रकार का भेदभाव न हो तथा सबको उनके उचित अधिकार प्राप्त हों। सामाजिक न्याय से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ जाति, मत (creed), लिंग, जन्म स्थान, धर्म या भाषा आदि में से किसी के भी आधार पर किसी के साथ भेदभाव न किया जाए तथा समाज में सभी को समान स्थान/अवसर प्राप्त हों। इसी प्रकार, राजनैतिक न्याय से अभिप्राय एक ऐसी व्यवस्था से है जहाँ सभी नागरिकों को समान रूप से मतदान का, चुनाव लड़ने का तथा सार्वजनिक पद प्राप्ति का अधिकार प्राप्त हो।

प्रस्तावना में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास और उपासना की स्वतंत्रता को भी आदर्श रूप में उल्लेखित किया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि सभी नागरिकों को समान रूप से इच्छानुसार धर्म पालन करने तथा अपने विचारों को स्वतंत्रता पूर्वक व्यक्त करने की छूट हो और राज्य इन विषयों में तब तक हस्तक्षेप न करे जब तक दूसरों की स्वतंत्रता अथवा अधिकार बाधित न हों।

प्रस्तावना में प्रतिष्ठा और अवसर की समानता का भी उल्लेख किया गया है। इससे अभिप्राय यह है कि सभी नागरिकों को अपनी प्रतिभा का पूर्ण उपयोग करने तथा बिना किसी विघ्न बाधा के अपने व्यक्तित्व के विकास का समुचित अवसर प्राप्त हो।

प्रस्तावना में व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने का भी उल्लेख किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत में बंधुता की भावना का आधार व्यक्ति की गरिमा होनी चाहिए न कि समाज में उसकी स्थिति। इसी प्रकार, राष्ट्र की एकता और अखंडता का आधार भी बंधुता की भावना होनी चाहिए।

संक्षेप में, प्रस्तावना का लक्ष्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है जहाँ जनता संप्रभु हो, शासन निर्वाचित और जनता के प्रति उत्तरदायी हो, शासन की सत्ता जनता के मौलिक अधिकारों से सीमित हो तथा जनता को अपने विकास का समुचित अवसर प्राप्त हो। यद्यपि वैधानिक रूप से प्रस्तावना न्यायालयों द्वारा लागू नहीं की जा सकती तथापि यह संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या करने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है तथा किंकर्त्तव्य विमूढ़ता की स्थिति में यह पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करती है।

## भारतीय संविधान : मुख्य विशेषताएँ

भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताएँ दो प्रकार की हैं। कुछ विशेषताएँ अद्वितीय हैं जो भारत के किसी पूर्व संविधान में नहीं पायी जाती हैं।

### अद्वितीय विशेषताएँ

*भारतीय जनता द्वारा निर्मित :* इस संविधान का निर्माण भारतीय जनता के प्रतिनिधियों द्वारा

1946-49 में एक संविधान सभा द्वारा किया गया। इससे पूर्व जितने भी संविधान इस देश में लागू हुए उन सब का निर्माण ब्रिटिश संसद द्वारा किया गया था। जिस संविधान सभा ने इस संविधान का निर्माण किया है वह परोक्ष रूप से प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा निर्वाचित की गई थीं। ये विधान सभाएँ स्वयं सीमित मताधिकार के आधार पर निर्वाचित हुई थी। देशी रियासतों के जो प्रतिनिधि संविधान सभा के सदस्य थे वे तो उनके शासकों द्वारा मनोनीत थे। इन सब के बावजूद संविधान सभा को जनता की प्रतिनिधि संस्था कहा जा सकता है क्योंकि इसमें समाज के सभी वर्गों का तथा सभी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व था।

*विभिन्न संविधानों का प्रभाव :* यह संविधान इस अर्थ में भी अद्वितीय है कि इसके निर्माण में विश्व के कई संविधानों का सहारा लिया गया। हमारे संविधान के मौलिक अधिकार और सर्वोच्च न्यायालय संबंधी व्यवस्थाओं पर अमेरिका, राज्य की नीति निदेशक तत्वों का आयरलैण्ड का, आपातकालीन व्यवस्थाओं पर जर्मनी का, विधायी शक्तियों के वितरण पर केनेडा का तथा संसदीय संस्थाओं पर ब्रिटेन का प्रभाव स्पष्ट दीखता है। इनके अतिरिक्त, हमारे संविधान निर्माताओं ने 1935 के भारतीय शासन अधिनियम से बहुत सी धाराएँ ज्यों की त्यों ली थी।

*जनता की संप्रभुता :* इस संविधान के अनुसार देश की सर्वोच्च सत्ता भारतीय जनता में सन्निहित है। इससे पूर्व के संविधानों में यह सत्ता ब्रिटिश संसद में सन्निहित थी, यहाँ तक कि 1947 के भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम में भी ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता को मान्यता प्राप्त थी। संप्रभुता का अंतर्निहित भाव यह है कि भारतीय जनता किसी भी बाह्यशक्ति के अधीन नहीं है।

*गणराज्य :* यह संविधान भारत में एक गणराज्य स्थापित करने की व्यवस्था करता है। इससे पूर्व ब्रिटेन का राजा यहाँ का राज्याध्यक्ष होता था, जिसे यह पद आनुवंशिकता के आधार पर प्राप्त होता था। प्राचीन भारत के कई भागों में गणराज्य का अस्तित्व था। यह व्यवस्था लगभग 1000 वर्ष तक जारी रही, किंतु तत्कालीन (संविधान निर्माण-काल में) भारत में कोई भाग ऐसा नहीं था, जहाँ गणराज्य व्यवस्था प्रचलित हो।

*पंथ निरपेक्ष राज्य :* यह संविधान भारत में एक पंथ निरपेक्ष राज्य व्यवस्था स्थापित करने का प्रबंध करता है। यद्यपि संविधान में कहीं भी पंथ निरपेक्षता की व्याख्या नहीं की गई तथापि संविधान के विभिन्न प्रावधानों से यह उद्भूत की जा सकती है। इसका प्रयोग धर्म पर आधारित भेदभाव के अभाव तथा सब धर्मों को समान सम्मान देने के रूप में किया गया है। इससे पूर्व 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के अंतर्गत धार्मिक क्रिया कलापों से संबंधित एक विभाग की व्यवस्था थी।

*मौलिक अधिकार एवं कर्त्तव्य :* संविधान में भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की कोई व्यवस्था नहीं थी। 1976 में 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से यह व्यवस्था संविधान में जोड़ी गई।

*राज्य के नीति निदेशक तत्व :* संविधान में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की व्यवस्था की गई है। इससे पूर्व किसी संविधान में ऐसी व्यवस्था नहीं थी। यद्यपि 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में उल्लेखित निर्देश पत्र राज्य की नीति के निदेशक तत्व जैसा प्रतीत होता है तथापि दोनों के उद्देश्यों और लक्ष्यों

में जमीन आसमान का अंतर है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान हमारे नेताओं ने स्वतंत्र भारत में भारतीय नागरिकों को जो मौलिक अधिकार मिलने चाहिए, उनके संबंध में कुछ वायदे किए थे, किंतु 1947 में जब भारत वर्ष स्वतंत्र हुआ तो हमारे नेताओं को यह अनुभव हुआ कि उनके पास कुछ मौलिक अधिकारों को, विशेषकर आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों को, प्रदान करने के पर्याप्त साधन नहीं है। किंतु साथ ही वे अपने वायदों से मुकरना भी नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने निश्चय किया कि मौलिक अधिकारों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाए : कुछ अधिकार तत्काल प्रदान कर दिए जाएँ तथा कुछ अधिकार उस समय प्रदान किए जाएँ जब उन्हें ऐसा करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जाए। प्रथम वर्ग के अधिकारों को मौलिक अधिकारों के नाम से संविधान के तीसरे अध्याय में सम्मिलित किया गया है जबकि दूसरे वर्ग के अधिकारों को राज्य के नीति के निदेशक तत्वों के नाम से चौथे अध्याय में सम्मिलित किया गया है। यद्यपि जिन अधिकारों को चतुर्थ अध्याय में सम्मिलित किया गया है, उन्हें लागू करने में न्यायालय असमर्थ है तथापि ये शासन के मूलभूत सिद्धांत हैं तथा राज्य (अर्थात् भारत सरकार, भारतीय संसद, राज्य सरकार, राज्य विधान मंडल, स्थानीय संस्थाएँ तथा भारतीय क्षेत्र में स्थित अथवा भारत सरकार के अधीन कोई भी सत्ता) के लिए उन्हें मान्यता देना आवश्यक है।

*न्यायिक समीक्षा :* संविधान संघीय तथा राज्य विधान मंडलों के अधिनियमों तथा संघीय और राज्यों की कार्यपालिकाओं के क्रिया-कलापों की न्यायिक समीक्षा करने की व्यवस्था करता है। इससे पूर्व किसी भी संविधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। इस व्यवस्था के फलस्वरूप शासन के दोनों अंग, विधायिका तथा कार्यपालिका पूर्ण सावधानी से कार्य करते हैं तथा अपनी सत्ता का उपयोग स्वेच्छाचारितापूर्वक नहीं कर सकते।

*पूर्ण वयस्क मताधिकार :* यह संविधान भारत में पूर्ण वयस्क मताधिकार की व्यवस्था करता है। इससे पूर्व जितने संविधान थे उन सबमें सीमित मताधिकार की व्यवस्था थी। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में भी (जिसमें सर्वाधिक लोगों को मताधिकार प्राप्त था) केवल 14 प्रतिशत लोगों को ही मताधिकार प्राप्त था। पाश्चात्य लोकतांत्रिक देशों में भी कई दशकों तक ऐसे अधिकार नागरिकों को प्राप्त नहीं थे। इस दृष्टि से भारतीय संविधान का यह कदम क्रांतिकारी ही कहा जाएगा कि जिसने कलम की एक नोक से पूर्ण वयस्क मताधिकार की व्यवस्था स्थापित कर दी।

*हिंदी को राजभाषा के रूप में मान्यता :* संविधान हिंदी को भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में मान्यता प्रदान करता है। इससे पूर्व भारत में अंग्रेजी को यह स्थान प्राप्त था। हिंदी के अतिरिक्त 17 अन्य भारतीय भाषाओं को संविधान क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में मान्यता प्रदान करता है।

*सुनमनीयता तथा दुष्नमनीयता का अनुपम मिश्रण :* इस संविधान में संशोधन करने की प्रक्रिया भी है। इससे पूर्व के किसी संविधान में संशोधन की किसी प्रक्रिया का कोई उल्लेख नहीं मिलता। केवल ब्रिटिश संसद को ही संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त था। इस संविधान में संशोधन की जो प्रक्रिया दी गई है उसमें सुनमनीयता तथा दुष्नमनीयता का अनुपम मिश्रण है। संविधान के कुछ प्रावधानों में संसद के दोनों सदनों के साधारण बहुमत से संशोधन संभव है,

उदाहरणार्थ, किसी राज्य के नाम अथवा सीमा में परिवर्तन करना, किंतु ऐसे संशोधन को संविधान का संशोधन नहीं माना जाता। कुछ संशोधन ऐसे हैं जिनके लिए संसद के दोनों सदनों के कुल सदस्यों की संख्या के पूर्ण बहुमत एवं उपस्थित मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता के साथ कुल राज्यों में से आधे राज्यों के विधान मंडलों द्वारा पुष्टि आवश्यक होती है। उदाहरणार्थ, जब कभी संविधान की संघीय प्रकृति से संबद्ध कोई संशोधन करना हो तो इस प्रक्रिया का अवलंबन आवश्यक होता है। शेष सभी संशोधनों के लिए संसद के दोनों सदनों के कुल सदस्यों की संख्या के पूर्ण बहुमत एवं उपस्थित मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। यह प्रक्रिया संविधान की दुष्नमनीयता का प्रमाण है।

### अन्य विशेषताएँ

*विस्तृत संविधान :* यह एक विस्तृत संविधान है जिसमें 395 अनुच्छेद तथा 12 अनुसूचियाँ हैं। मूल संविधान में केवल 8 अनुसूचियाँ ही थीं। कालांतर में विभिन्न संवैधानिक संशोधनों के द्वरा चार अनुसूचियाँ और बढ़ाई गईं। इससे पूर्व 1935 का भारतीय शासन अधिनियम भी सुविस्तृत था। उसमें 321 विभाग और 10 अनुसूचियाँ थीं।

*संसदीय लोकतंत्र :* यह संविधान इस देश में पूर्ण संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था करता है, जिसमें जनता अपने प्रतिनिधियों को चुनती है, ये प्रतिनिधि कार्यपालिका को नियंत्रित करते हैं तथा मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से इनके प्रति उत्तरदायी होती है। इससे पूर्व इस दिशा में कुछ प्रयत्न किए गए थे, विशेषकर 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा, जिसमें प्रांतीय स्वायत्तता का प्रावधान था। किंतु उसमें इतने अधिक प्रतिबंधों की व्यवस्था थी कि पूर्ण संसदीय लोकतंत्र का विकास संभव नहीं था। संसदीय लोकतंत्र में एक निश्चित अंतराल के बाद निर्वाचन होते हैं।

*संघीय राज्य व्यवस्था :* यह संविधान इस देश में संघीय राज्य व्यवस्था स्थापित करता है। यद्यपि 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में भी संघीय शासन प्रणाली स्थापित करने की व्यवस्था थी तथापि उसके कट्टर विरोध के कारण, विशेषकर देशी रियासतों के असहयोग के कारण, यह व्यवस्था लागू न की जा सकी। संविधान की व्यवस्थानुसार संघीय प्रणाली लागू होने के बावजूद कुछ आलोचक इससे असंतुष्ट हैं क्योंकि इसमें केन्द्रीकरण का पूर्ण बाहुल्य है। कुछ आलोचक तो यहाँ तक कहते हैं कि इसे 'एक संघीय संविधान, जिसमें कुछ एकात्मक प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं' कहने की अपेक्षा एक 'एकात्मक संविधान, जिसमें कुछ संघीय लक्षण विद्यमान हैं', कहना अधिक उचित होगा।

*सकारात्मक कार्य :* यह संविधान समाज के दुर्बल वर्गों की स्थिति में उत्थान करने के लिए कुछ ठोस सकारात्मक कार्यों, जैसे विधान मंडलों और सरकारी नौकरियों में आरक्षण आदि की व्यवस्था करता है। इससे पूर्व 1909 के भारतीय परिषद् अधिनियम, 1919 के भारतीय शासन अधिनियम तथा 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में भी इसी प्रकार की आरक्षण व्यवस्था विद्यमान थी।

*आपातकालीन प्रावधान :* संविधान में तीन प्रकार के आपातकाल (राष्ट्रीय आपात, संवैधानिक तंत्र की विफलता तथा वित्तीय आपात) की व्यवस्था है। इससे पूर्व 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में भी न्यूनाधिक-

इसी प्रकार की व्यवस्था थी। राष्ट्रीय आपात से हमारा अभिप्राय संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत घोषित व्यवस्था से है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत जब कभी राष्ट्रपति को युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आंतरिक सशस्त्र विद्रोह के कारण देश अथवा देश के किसी भाग में सुरक्षा को खतरा महसूस हो तो वह आपातकाल की घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में संविधान का संघीय स्वरूप एकात्मक रूप ग्रहण कर लेता है।

संवैधानिक तंत्र की विफलता से हमारा अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जब राष्ट्रपति को किसी राज्य के राज्यपाल से ऐसी सूचना प्राप्त हो या फिर उसे यह विश्वास हो जाए कि उस राज्य में संविधान की व्यवस्था के अनुसार शासन संचालन संभव नहीं, तो वह वहाँ पर राष्ट्रपति शासन की स्थापना की घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में राज्य की कार्यपालिका शक्ति केंद्रीय कार्यपालिक के अधीन तथा राज्य की विधायी शक्तियाँ संसद के अधीन हो जाती हैं।

वित्तीय आपात से हमारा अभिप्राय ऐसी स्थिति से है जब राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि राष्ट्र अथवा राष्ट्र के किसी भाग में वित्तीय स्थिरता संकट में पड़ गई है तो वह आपातकाल की घोषणा कर सकता है। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह हर राज्यों को निर्देश दे सके कि किस प्रकार उनको अपने वित्तीय विषयों को संचालित करना है। राष्ट्रपति को यह अधिकार भी प्राप्त हो जाता है कि वह ऐसे अधिकारियों के वेतन, भत्तें, आदि में कटौती कर सके जिन्हें भारत की संचित निधि से वेतन, भत्ता आदि प्राप्त होते हैं तथा जिनमें साधारणतया कटौती नहीं की जा सकती।

### स्वतंत्र अभिकरण

संविधान में कुछ स्वतंत्र अभिकरणों की भी व्यवस्था है, जो उन्हें दिए गए कार्यों को संपादित करते हैं। इससे पूर्व 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में भी ऐसे अभिकरणों की व्यवस्था थी। संविधान में जिन अभिकरणों की व्यवस्था है, उनमें से कुछ निम्नानुसार हैं :

1. *निर्वाचन आयोग :* यह संसद, राज्य विधान मंडलों, राष्ट्रपति तथा उप राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था करता है। इस संस्था को कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संविधान में कुछ प्रावधान रखे गए हैं।
2. *नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक :* यह संघ तथा राज्यों के वित्त एवं लेखा की देख-रेख करता है तथा उनको नियंत्रित करता है। इसे भी संघीय और राज्यों की कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संविधान में व्यवस्था की गई है।
3. *संघीय और राज्य लोक सेवा आयोग :* ये क्रमशः केंद्रीय और राज्य सरकारों की उच्चतर सेवाओं के लिए अभ्यर्थियों की परीक्षाओं का संचालन तथा उनका साक्षात्कार करते हैं एवं उनकी नियुक्ति के लिए संस्तुतियाँ करते हैं।

## भारतीय संघ और उसका क्रियान्वित स्वरूप

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में सर्व प्रथम संघ शासन की स्थापना की व्यवस्था की गई किंतु इसका कट्टर विरोध होने के कारण, विशेषकर देशी रियासतों के असहयोग के कारण, वह अस्तित्व में न आ सका। हमारे संविधान

निर्माता इस भूत कालीन अनुभव से हतोत्साहित नहीं हुए और उन्होंने नवीन संविधान में पुनः इसकी व्यवस्था की। हमारी राज्य व्यवस्था के संबंध में भी दो मत हैं : कुछ लोगों के मतानुसार यह एक संघ राज्य है जिसमें एकात्मक लक्षणों का प्राधान्य है जबकि दूसरे लोगों का विचार है कि यह प्रधानतया एक एकात्मक राज्य है जिसमें कुछ संघीय लक्षणों का समावेश हो गया है। प्रो. के.सी. व्हीयर, जो कि संघवाद के एक अधिकारिक विद्वान माने जाते हैं, इसे एक अर्धसंघीय राज्य व्यवस्था के नाम से संबोधित करते हैं। अतः यह आवश्यक है कि हम पहले संघ राज्य के लक्षणों को समझें तदुपरांत इस पर विचार करें कि भारतीय राज्य व्यवस्था को संघात्मक माना जाए अथवा नहीं।

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि जब दो या दो से अधिक स्वतंत्र राज्य, जिनमें कुछ समान विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिनके आधार पर उनमें सामंजस्य स्थापित होता है, परस्पर मिलकर एक लिखित समझौते के द्वारा, किसी एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए, एक नवीन राज्य की रचना करते हैं, जिसे (नवीन राज्य को) कुछ निश्चित विषयों में संप्रभु अधिकार प्रदान किए जाते हैं, जिन पर उसका अनन्य क्षेत्राधिकार रहता है, तथा जो अवशिष्ट विषयों पर अपना क्षेत्राधिकार बनाए रखते हैं, तो यह माना जाता है कि उन्होंने संघ राज्य का निर्माण कर लिया।

अब यदि हम उपर्युक्त कसौटी का कड़ाई से पालन करें तो विश्व के बहुत कम संघ राज्य इस पर खरे उतरेंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि वे कौन से परमावश्यक तत्व हैं जिनके बिना किसी राज्य को संघात्मक राज्य का नाम नहीं दिया जा सकता। प्रो. के.सी. व्हीयर ने अपने ग्रंथ *'संघात्मक शासन'* में 'संघीय सिद्धांत' का उल्लेख किया है जिसके बिना किसी राज्य को संघ का दर्जा नहीं दिया जा सकता। उनके मतानुसार जब कभी शासन के क्षेत्राधिकार को संघीय तथा राज्य की, ऐसी दो सरकारों में विभक्त किया जाता है, जिनमें कोई किसी दूसरे के अधीन नहीं होती तथा अपने-अपने क्षेत्र में समन और स्वतंत्र सत्ता प्राप्त रहती है, तो ऐसी व्यवस्था संघीय सिद्धांत का, प्रतिनिधित्व करती है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या हम संघीय राज्य का दर्जा उन्हीं राज्यों को देंगे जहाँ पर संघीय सिद्धांत को बिना किसी भेदभाव के, पूर्णतया लागू किया गया हो। प्रो. व्हीयर के मतानुसार अपवाद के लिए गुंजाइश हो सकती है, यदि संघीय सिद्धात का प्राधान्य कायम रखा जाए।

अब यदि हम संघीय सिद्धांत पर दृष्टिपात करें तो हम निम्नलिखित लक्षणों को अत्यावश्यक पाते हैं: 1. केंद्रीय अथवा संघीय सरकार तथा इकाइयों (राज्यों अथवा प्रांतों) की सरकारों के बीच शक्तियों का सुनिश्चित बँटवारा होना चाहिए, 2. यह बँटवारा एक लिखित समझौते के द्वारा होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, एक लिखित संविधान होना चाहिए जो संघ और राज्य की शक्तियों का स्रोत हो, 3. इस समझौते अर्थात् संविधान में किसी एक पक्ष (संघ अथवा राज्य शासन) द्वारा संशोधन नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संविधान दुष्नमनीय होना चाहिए, 4. संविधान को सर्वोच्चता प्राप्त होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि संघ और राज्यों की सत्ताओं, यथा विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका को संविधान की सत्ता के अधीन होना चाहिए, 5. संघीय अथवा सर्वोच्च न्यायालय जैसी एक निष्पक्ष न्यायपालिका होनी चाहिए, जो विभिन्न सरकारों (यथा संघ और राज्य तथा राज्य और राज्य) के बीच उत्पन्न विवादों को निपटा सके

तथा आवश्यकता पड़ने पर संविधान की व्याख्या कर सके।

अब यदि हम उपर्युक्त कसौटी पर भारतीय संविधान को कसते हैं तो हमें निम्न लक्षण दिखाई पड़ते हैं :

*शक्तियों का बँटवारा :* भारतीय संविधान में संघ और राज्यों में शक्तियों का सुनिश्चित बँटवारा मिलता है। संविधान की सातवीं अनुसूची में तीन सूचियों का प्रावधान है : 1. संघ सूची में 97 विषय हैं जिनमें संघ सरकार को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं, 2. राज्य सूची में 66 विषय हैं जिनमें सज्यों को अनन्य क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं, 3. समवर्ती सूची में 47 विषय हैं, जिनमें संघ और राज्यों, दोनों को क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं, किंतु यदि दोनों की विधियों में परस्पर विरोध हो तो संघीय विधि को वरीयता प्राप्त रहती है।

*लिखित संविधान :* संघ और राज्यों, दोनों की सरकारों की शक्तियों का मूल स्रोत संविधान है जिसका निर्माण संविधान सभा ने नवंबर 1949 में किया था।

*संविधान की दुष्नमनीयता :* संघीय सिद्धांत से संबद्ध संवैधानिक व्यवस्था में संशोधन करने की पद्धति दुष्नमनीय है। ऐसे संशोधन के लिए न केवल संसद के दोनों सदनों की कुल संख्या के पूर्ण बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है वरन, आधे राज्यों के विधान मंडलों की पुष्टि भी आवश्यक होती है।

*संविधान की सर्वोच्चता :* भारतीय संविधान को सर्वोच्चता प्राप्त है। संघ और राज्यों की समस्त सत्ताओं यथा विधायिकाओं, कार्यपालिकाओं तथा न्यायपालिकाओं की सत्ताओं का मूल स्रोत संविधान है और ये सभी संविधान के अधीन हैं।

*निष्पक्ष न्यायपालिका :* संविधान एक सर्वोच्च न्यायालय की व्यवस्था करता है जिसे संविधान की व्याख्या का सर्वोच्च अधिकार प्राप्त है। इसे संघ और किसी एक राज्य अथवा संघ और एक से अधिक राज्यों अथवा किसी एक राज्य और दूसरे राज्य, अथवा किसी एक राज्य और एक से अधिक राज्यों के बीच उत्पन्न विवादों के संबंध में मौलिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संघीय राज्य के लिए अत्यावश्यक सभी प्रमुख तत्व भारतीय संविधान में विद्यमान हैं। किंतु भारतीय संविधान में कुछ ऐसे तत्व भी हैं जो संघीय शासन पद्धति के लिए साधारणतया मान्य मापदण्डों से कुछ विपरीत हैं। ऐसे तत्वों में से कुछ मुख्य तत्व निम्नानुसार हैं :

क. साधारणतया संघीय शासन व्यवस्था में इकाईयों का अपना एक अंग अस्तित्व होता है तथा उनका अपना एक अलग संविधान भी होता है, जिसमें वे अपनी आवश्यकता के अनुसार संशोधन कर सकते हैं किंतु भारत में ऐसा नहीं है। भारतीय संसद को साधारण विधि द्वारा न केवल किसी भी राज्य की सीमा में परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त है वरन् उसके नाम में भी परिवर्तन कर सकती है। राज्यों का अपना कोई अलग संविधान नहीं है तथा अपने आप से वे संविधान में कोई संशोधन नहीं कर सकते।

ख. संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का जो बँटवारा किया गया है वह भी संघ की ओर अधिक झुका हुआ है। संघ सूची सबसे बड़ी है। समवर्ती सूची से संबद्ध विषयों में भी केंद्र को वरीयता प्राप्त है। तीनों सूचियों को मिलाने पर हम देखते हैं कि लगभग दो तिहाई विषयों में केंद्र का प्राधान्य है। समवर्ती सूची में आर्थिक तथा सामाजिक

योजना अथवा सामाजिक सुरक्षा जैसे कुछ विषय हैं जिनकी व्याख्या इस प्रकार से की जा सकती है कि व्यवहार में राज्य की शक्तियों को अत्यधिक सीमित किया जा सकता है। यथार्थ में, योजना आयोग को, जो एक संविधानेतर संस्था है, पंच वर्षीय योजनाओं के अंतर्गत होने वाले वित्तीय वितरण में बड़ी भूमिका प्राप्त है। इतना ही नहीं, साधारणतया संघ राज्यों में अवशिष्ट विषय राज्यों के अधीन रहते हैं किंतु भारत में ये संघ सरकार को प्राप्त हैं।

ग. राज्य सूची से संबंधित विषयों में भी संविधान संसद को विधि बनाने का अधिकार देता है। यदि संसद का उच्च सदन अर्थात् राज्य सभा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पारित करे कि यह राष्ट्रीय हित में उचित होगा कि संसद उक्त विषय पर विधि बनाए । उक्त विधि, प्रस्ताव में निर्दिष्ट अवधि तक लागू होगी किंतु यह अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं हो सकती। यदि राज्य सभा उपर्युक्त पद्धति द्वारा पुनः प्रस्ताव पारित करे तो इस अवधि को पुनः एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है। राज्य सभा ऐसा प्रस्ताव पारित कर इस अवधि को बार-बार बढ़ा सकती है किंतु एक बार में यह अवधि एक वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती।

घ. इतना ही नहीं, राज्यपाल राज्य सूची से संबंधित किसी भी विषय पर राज्य विधान मंडल द्वारा निर्मित किसी भी विधि को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है। ऐसी कुछ विधियों का सुरक्षित रखना परमावश्यक है तथा कुछ विषयों से संबंधित विधेयकों को तो राज्य विधान मंडल में राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना प्रस्तुत ही नहीं किया जा सकता।

ङ. यद्यपि शांति और व्यवस्था राज्य सूची से संबंधित विषय है तथापि केंद्रीय सरकार, यदि आवश्यकता समझती है तो राज्यों की सहमति के बिना भी केंद्रीय रिजर्व पुलिस भेज देती है। कभी-कभी तो राज्य सरकारों के विरोध के बावजूद ऐसा किया जाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि केंद्रीय सरकार के ऐसे कदमों का विरोध पक्ष विरोध करता है, किंतु जब वह उचित समझता है (जैसे कि अयोध्या और गुजरात मामलों में) तो केंद्रीय रिजर्व पुलिस को भेजने की माँग भी करता है।

च. राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है तथा वे उसके प्रसाद पर्यंत ही सत्तारूढ़ रहते हैं। जब कभी राज्यपाल स्वविवेक संबंधी अपने अधिकारों का उपयोग करते हैं तो वे राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

छ. संघीय सरकार को कुछ विषयों में राज्य सरकारों को निर्देश देने का अधिकार प्राप्त है। जिन विषयों में ये निर्देश दिए जा सकते हैं वे इस प्रकार हैं : संसद द्वारा निर्मित विधि का पालन करना अथवा संघीय कार्यपालिका शक्ति के उपयोग के विरुद्ध आचरण न करना। ऐसे निर्देश राज्यों के लिए बाध्यकारी हैं। संविधान के द्वारा संघीय सरकार को ऐसे निर्देशों का पालन करवाने के लिए पर्याप्त शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इन निर्देशों का पालन न करने की स्थिति को संवैधानिक तंत्र की विफलता माना जा सकता है तथा उस राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू किया जा सकता है।

ज. संविधान के द्वारा वित्तीय साधनों का इस प्रकार वितरण किया गया है कि राज्य सरकारों को सदैव अनुदान के लिए संघ सरकार का मुख देखना पड़ता है। वित्त आयोग, जो इस प्रकार के अनुदानों की संस्तुति करता है, वह भी राष्ट्रपति द्वारा ही नियुक्त किया जाता है।

झ. संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत जब आपातकाल की उद्घोषणा होती है तो संसद को राज्य सूची से संबंधित विषयों में विधि बनाने, राज्यों को अपनी कार्यपालिका शक्ति का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए, इस विषय में निर्देश देने, संघीय अधिकारियों को राज्य सूची से संबंधित विषयों में कार्यपालिका शक्ति का उपयोग करने तथा संविधान के वित्तीय प्रावधानों को स्थगित करने के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।

ञ. जब कभी संविधान के अनुच्छेद 356 के अंतर्गत संवैधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा की जाती है तो राष्ट्रपति को राज्य शासन की (जिसमें राज्यपाल की शक्तियाँ भी सम्मिलित हैं) कार्यपालिका शक्ति अपने हाथ में लेने का अधिकार प्राप्त हो जाता है, यद्यपि वह उच्च न्यायालय के अधिकारों को ग्रहण नहीं कर सकता। राष्ट्रपति को यह अधिकार भी प्राप्त हो जाता है कि वह संसद को राज्य सूची से संबंधित विषयों में भी विधि निर्माण के लिए अधिकृत कर दे।

ट. जब कभी संविधान के अनुच्छेद 360 के अंतर्गत वित्तीय आपात की उद्घोषणा की जाती है तो राष्ट्रपति राज्यों को वित्त विषयक आवश्यक निर्देश जारी कर सकता है। ऐसे निर्देशों में संघ और राज्यों के सरकारी नौकरों के वेतन, भत्ते आदि में कटौती करने से संबंधित आदेश भी सम्मिलित हैं। ऐसे आपातकाल में राज्य विधान मंडलों द्वारा पारित धन विधेयक संघीय सरकार के नियंत्रण के अंतर्गत आ जाते हैं।

ठ. साधारणतया संघ राज्यों में दोहरी नागरिकता, संघीय नागरिकता तथा राज्य की नागरिकता की व्यवस्था होती है, किंतु भारत वर्ष में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। भारत में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था है। यथार्थ में, भारत में प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार प्राप्त है कि वह भारत के किसी भी भाग में जाकर बस जाए।

ड. साधारणतया संघ राज्यों में दोहरे न्यायालय होते हैं। संघीय न्यायालय राज्य के न्यायालयों से भिन्न होते हैं। राज्यों के अपने सर्वोच्च न्यायालय होते हैं, जिनके निर्णयों के विरुद्ध किसी अन्य न्यायालय में अपील नहीं हो सकती। किंतु भारत वर्ष में इकहरी न्याय-व्यवस्था है। यहाँ का उच्चतम न्यायालय अपील का सर्वोच्च न्यायालय है, जिसे राज्य सूची से संबंधित विषयों में भी अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है।

ढ. साधारणतया संघ तथा राज्यों की सरकारी नौकरियों में पृथक्करण होता है। संघ की अपनी नौकरियाँ होती हैं तथा राज्यों की अपनी नौकरियाँ। किंतु भारत वर्ष में अखिल भारतीय नौकरियों की व्यवस्था है। इन नौकरियों के लोगों को किसी विशिष्ट राज्य में नियुक्त किया जाता है किंतु आवश्यकता पड़ने पर संघ सरकार एक निश्चित अवधि के लिए उन्हें डेपुटेशन पर बुला सकती है। इसके कारण इन नौकरियों के लोगों में घनिष्ट भाईचारे की भावना घर कर जाती है जो कि संघीय सिद्धांत को दुर्बल बना देती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हमारे संविधान निर्माता केंद्र को एक मजबूत शक्ति बनाना चाहते थे। विधायी, कार्यकारी तथा न्यायिक शक्तियों के वितरण से यह सिद्ध है। आपातकाल के दौरान तो संघात्मक शासन एक प्रकार से एकात्मक स्वरूप ही ग्रहण कर लेता है। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि हमारे संविधान निर्माता संघीय सिद्धांत के अनुपालन में क्यों हिचकिचाते थे। इसका उत्तर निम्नलिखित पंक्तियों से प्राप्त किया जा सकता है :

क. जब संविधान सभा संविधान का निर्माण कर रही थी तब देश में चारों ओर अराजकता मची हुई थी। भारत के विभाजन के कारण सांप्रदायिक शक्तियाँ अत्यधिक सक्रिय थीं। भारत के कुछ भागों में कम्युनिष्ट सक्रिय थे। मद्रास प्रांत के वारंगल तथा नलगोड़ा जिलों में मद्रास सरकार का हुकुम नहीं चलता था। उन दिनों के समाचार पत्रों में यह चर्चा भी थी कि भारत के कुछ जगहों के लोग पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमानबंग्लादेश) के साथ मिलकर एक स्वतंत्र बंगला भाषी राष्ट्र बनाने की फिराक में हैं। अतः यह अनुभव किया गया कि इस प्रकार की चुनौतियों का सामना करने के लिए संघीय सरकार का मजबूत होना आवश्यक है।

ख. जब भारत वर्ष स्वतंत्र हुआ तब यहाँ विकेन्द्रित एकात्मक शासन व्यवस्था प्रचलित थी। सर्वसाधारण जनता भारतीय राष्ट्रवाद से प्रभावित थी। यथार्थ में, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1946 का प्रांतीय विधान सभाओं का चुनाव अखंड भारत के नारे पर लड़ा और जीता था। केवल कांग्रेस ही नहीं, लगभग सभी राजनैतिक दल कट्टर राष्ट्रवाद की भावना से ओत-प्रोत थे।

ग. विश्व के लगभग सभी संघ राज्यों में साधारण प्रवृत्ति केन्द्रीकरण की ओर है। यातायात, संचार साधनों तथा प्राविधिक क्षेत्र में हुए आधुनिक विकास के कारण यह प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है।

## अभ्यास

1. प्रस्तावना से क्या अभिप्राय है?
2. प्रस्तावना में उल्लेखित संविधान के उद्देश्यों और लक्ष्यों का संक्षेप में परीक्षण कीजिए।
3. भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. संघ राज्य का निर्माण कब और कैसे होता है?
5. संघ और राज्यों के बीच विधायी शक्तियों के वितरण का विवरण दीजिए।
6. भारतीय संविधान में कौन-कौन से संघीय तत्व पाए जाते हैं?
7. भारतीय संघ राज्य में कौन सी एकात्मक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं?
8. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए।
   क. पंथ निरपेक्ष राज्य।
   ख. पूर्ण वयस्क मताधिकार।
   ग. भारतीय संविधान के स्वतंत्र अभिकरण।

अध्याय 4

# मौलिक अधिकार, मौलिक कर्त्तव्य और राज्य के नीति निदेशक तत्व

## मौलिक अधिकार

मनुष्य को समुचित व्यवस्था प्राप्त होने पर उसके दैविक गुणों का विकास संभव है। अधिकार मनुष्य को वैसा वातावरण उपलब्ध कराते हैं। अधिकार मनुष्यों के वे दावे हैं जो उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए परमावश्यक हैं तथा जिन्हें समाज अथवा राज्य मान्यता प्रदान करते हैं। संविधान में सामान्यतया सम्मिलित तथा राज्य द्वारा मान्यता प्रदान किए जाने वाले अधिकारों को मौलिक अधिकार कहा जाता है। मौलिक अधिकार किसी व्यक्ति के वे अधिकार होते हैं जिन्हें न्यायालय द्वारा लागू किया जाता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हमारे नेताओं ने ये संकेत दिए थे कि स्वतंत्र भारत में नागरिकों को कुछ मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे। यथार्थ में, भावी संवैधानिक व्यवस्था से संबद्ध विभिन्न सुझावों में उन अधिकारों का उल्लेख पाया जाता है जो भारतीय नागरिकों को प्राप्त होने चाहिए। 1925 के कॉमनवेल्थ ऑफ इंडिया बिल, 1928 की नेहरू कमेटी रिपोर्ट, 1932-33 में भारतीय संवैधानिक सुधारों से संबद्ध संयुक्त समिति के सम्मुख नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन का स्मरण पत्र, सप्रू कमेटी के सम्मुख एम. वेंकटरंगैया का मेमोरेण्डम तथा स्वयं सप्रू कमेटी द्वारा प्रस्तुत प्रस्तावों में इन विभिन्न मौलिक अधिकारों का उल्लेख है।

मौलिक अधिकारों का प्रावधान भारतीय संविधान के तीसरे भाग में किया गया है। ये अधिकार 6 प्रकार के हैं। इनकी व्याख्या इस प्रकार है :

**समता संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 14-18)**

इस अधिकार से संबद्ध 5 अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता तथा भारतीय भू क्षेत्र के सभी व्यक्तियों को विधि द्वारा समान संरक्षण की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 15 धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग या जन्म-स्थान में से किसी के भी आधार पर नागरिकों में विभेद करने की मनाही करता है। अनुच्छेद 16 सार्वजनिक पदों पर नियुक्ति के संबंध में सभी नागरिकों को समान अवसर प्रदान करने से संबद्ध है। अनुच्छेद 17 अस्पृश्यता के अंत की व्यवस्था करता है। अनुच्छेद 18 उपाधियों के लोप से संबद्ध है।

समता संबंधी उपर्युक्त अधिकारों के होते हुए भी 'राज्य' को यह अधिकार है कि वह महिलाओं, बालकों, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के हितार्थ विशेष व्यवस्था कर सकता है। इसी प्रकार, राज्यों की सेवाओं में नियुक्ति के लिए निवास संबंधी योग्यता भी निर्धारित की जा सकती है।

इस मौलिक अधिकार का उद्देश्य देश में विधि का शासन स्थापित करना है। इसका प्रयोजन विधि के समक्ष सभी नागरिकों को समान समझना है। किसी भी नागरिक को धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग अथवा जन्म-स्थान के आधार पर न तो विशेष अधिकार मिलने चाहिए तथा न किसी प्रकार की अयोग्यता होनी

चाहिए। इसका लक्ष्य समाज में प्रचलित सामंती असमानता को समाप्त करना है।

### स्वतंत्रता संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 19-22)

इस अधिकार से संबद्ध 4 अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 19, छह स्वतंत्रताओं की व्यवस्था करता है : 1. भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, 2. शांतिपूर्वक तथा निरायुध सभा की स्वतंत्रता, 3. समुदाय अथवा संघ बनाने की स्वतंत्रता, 4. भारत के समूचे राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण की स्वतंत्रता, 5. भारत के किसी भी क्षेत्र में निवास करने अथवा बस जाने की स्वतंत्रता तथा 6. किसी भी प्रकार की वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता।

इस अनुच्छेद का मुख्य उद्देश्य लोकतंत्र के सुचारुतापूर्वक संचालन के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करना है। राज्य को इन सब स्वतंत्रताओं पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाने का अधिकार है। उदाहरणार्थ भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग पर भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में, अथवा न्यायालय अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्ति युक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, शांतिपूर्ण तथा निःशस्त्र सभा करने के अधिकार के प्रयोग पर भारत की संप्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हितों में युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं: संघ या समुदाय बनाने की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग पर भारत की संप्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हितों में युक्ति युक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं, भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण करने अथवा भारत के राज्य के क्षेत्र के किसी भी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते है, इसी प्रकार, वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रयोग पर जन साधारण के हितों में युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए जा सकते है तथा राज्य को यह भी अधिकार है कि वह किसी वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या करोबार करने के लिए आवश्यक वृत्तिक तकनीकी योग्यताएँ निर्धारित कर सके।

अब यदि हम इन प्रतिबंधों पर विचार करें तो ऐसा लगता है कि ये प्रतिबंध परमावश्यक हैं। इन प्रतिबंधों के अभाव में समाज में अराजकता फैल जाएगी। इस विषय में केवल एक ही आशंका थी कि कही राज्य इनका दुरुपयोग न करे। इस आशंका के निवारण के लिए संविधान में 'प्रतिबंधों' से पूर्व 'युक्तियुक्त' विशेषण का प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिबंध युक्तियुक्त ही होने चाहिए और युक्तियुक्तता के निर्णय का अधिकार शासन को नहीं, वरन् न्यायपालिका को है।

अनुच्छेद 20 अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के संबंध में संरक्षण की व्यवस्था करता है। इसके अनुसार कोई भी व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक सिद्धदोष नहीं ठहराया जाएगा जब तक कि उसने किसी प्रचलित विधि का उल्लंघन न किया हो। उसे उससे अधिकदंड नहीं दिया जाएगा जितने की व्यवस्था अपराध किए जाने के समय प्रचलित विधि के अनुसार थी। एक ही अपराध के लिए एक से अधिक बार न तो किसी पर मुकदमा चलाया जा सकता है और न ही उसे दंड दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 21 के अनुसार किसी व्यक्ति को विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के बिना, उसके प्राण या वैयक्तिक स्वतंत्रता से, वंचित नहीं किया जा सकता है।

अनुच्छेद 22 कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण प्रदान करता है। इस अनुच्छेद के अनुसार जब कभी कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है तो यथाशीघ्र उसे उन कारणों से परिचित कराया जाना चाहिए जिनके आधार पर उसे गिरफ्तार किया गया है। उसे अपनी रुचि के वकील से परामर्श करने तथा प्रतिरक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा। इसमें यह भी व्यवस्था है कि गिरफ्तार व्यक्ति को 24 घण्टे के भीतर निकटतम न्यायाधीश के सम्मुख पेश किया जाना चाहिए। इसमें केवल एक अपवाद है। यदि कोई व्यक्ति किसी निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है तो उसे 24 घण्टे के भीतर न्यायाधीश के सम्मुख पेश करना आवश्यक नहीं है।

ऐसा व्यक्ति भी जो किसी निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है, पूर्णतया असहाय नहीं है। उसका मामला एक परामर्शदात्री बोर्ड के सम्मुख तीन महीनों के भीतर रखना आवश्यक है। ऐसे परामर्शदात्री बोर्ड में वे व्यक्ति नियुक्त किए जाते हैं जो किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्त किए जाने के योग्य हों। गिरफ़्तार व्यक्ति को तीन महीनों से अधिक अवधि तक तभी रखा जा सकता है जब परामर्शदात्री बोर्ड इसकी अनुमति दे दे।

स्वतंत्रता संबंधी उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि इन स्वतंत्रताओं का मुख्य उद्देश्य कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाना है।

**शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)**

इस अधिकार से संबद्ध 2 अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 23 किसी भी व्यक्ति को बल पूर्वक काम लेने से मुक्ति दिलाता है। यह मानव के क्रय विक्रय का भी निषेध करता है, किंतु राज्य लोक हित की दृष्टि से अनिवार्य सेवा ले सकता है।

**धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 25-28)**

इस अधिकार से संबद्ध 4 अनुच्छेद हैं। अनुच्छेद 25 के अनुसार लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अन्तःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा। किंतु राज्य को यह अधिकार है कि वह धार्मिक आचरण से संबद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलापों का विनियमन कर सकता है। राज्य को यह भी अधिकार है कि वह सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए आवश्यक हस्तक्षेप कर सकता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राज्य साधारणतया धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करता किंतु लोक व्यवस्था, सदाचार, स्वास्थ्य अथवा किसी लौकिक क्रिया से संबद्ध क्रियाकलापों को विनियमित कर सकता है।

अनुच्छेद 26 व्यवस्था करता है कि लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को, धार्मिक संस्थाओं की स्थापना और उनके पोषण का, अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का, जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का, और ऐसी संपत्ति के प्रशासन का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 27 व्यवस्था करता है कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों को देने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिसकी जमा राशि से किसी विशिष्ट धर्म का पोषण किया जाता हो।

अनुच्छेद 28 व्यवस्था करता है कि : 1. राज्य निधि से पूर्णत: पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी तथा 2. राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में शिक्षा ग्रहण करने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने अथवा धार्मिक उपासना में उपस्थित होने को बाध्य नहीं किया जाएगा। धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि इन अनुच्छेदों का मुख्य उद्देश्य इस देश में एक पंथ निरपेक्ष राज्य व्यवस्था स्थापित करना है। किंतु पंथ निरपेक्षता की हमारी धारणा विश्व में प्रचलित अन्य देशों की धारणाओं से भिन्न है। भारत में न तो राज्य धार्मिक है और न धर्म विरुद्ध । यह धार्मिक मामलों में अहस्तक्षेप वादी भी नहीं है। यह पंथ निरपेक्ष राज्य है।

**संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार (अनुच्छेद 29-30)**

इस अधिकार से संबद्ध 2 अनुच्छेद हैं : अनुच्छेद 29 व्यवस्था करता है कि भारत में रहने वाले किसी भी नागरिक को, जिसकी अपनी कोई विशिष्ट भाषा, लिपि या संस्कृति है उसे बनाए रखने का अधिकार होगा। यह अनुच्छेद यह भी व्यवस्था करता है कि किसी भी नागरिक को धर्म, प्रजाति, जाति, भाषा या इनमें से किसी के भी आधार पर राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद 30 अल्पसंख्यकों को अपनी शिक्षण संस्थाएँ स्थापित करने तथा उनका प्रबंध करने की स्वतंत्रता देता है। यदि राज्य किसी ऐसी शिक्षण संस्था की संपत्ति का आधिपत्य ग्रहण करता है, जिसकी स्थापना किसी अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा हुई हो या जिसकी प्रबंध व्यवस्था कोई अल्पसंख्यक वर्ग करता है तो उसे इतने मुआवजे की व्यवस्था करनी आवश्यक होगी जिससे अल्पसंख्यकों के अधिकार समाप्त तथा सीमित न हो जाएँ। जब राज्य किसी शिक्षण संस्था को अनुदान देता है तो वह इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि उसका स्वामित्व अथवा प्रबंध-व्यवस्था किसी अल्पसंख्यक वर्ग के हाथों में है।

**संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)**

अनुच्छेद 32 मौलिक अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करता है। इस अनुच्छेद के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों के लागू करने के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश या लेख जारी करने का अधिकार प्राप्त है। यह अनुच्छेद विशेष रूप से निम्न लिखित लेखों का उल्लेख करता है :

*बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus) :* जब कभी किसी व्यक्ति को विधि की अनुमति के बिना बंदी बनाकर रखा जाता है तो, जिसने उस व्यक्ति को बंदी बना रखा है, उस व्यक्ति या अधिकारी को न्यायालय यह आदेश जारी करता है कि वह बंदी को न्यायालय के सम्मुख प्रत्यक्ष (प्रस्तुत) करे तथा उन कारणों को बताए जिनके आधार पर उसको बंदी बनाया गया है।यदि न्यायालय जाँच करने के पश्चात् इस निर्णय पर पहुँचता है कि उस बंदी को विधि विरुद्ध बंद किया गया है तो वह उसे मुक्त करने का आदेश देता है।

*परमादेश (Mandamus) :* जब कभी कोई शासक, न्यायालय, निगम अथवा सार्वजनिक अधिकारी अपने लिए निर्धारित कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो उच्चतम न्यायालय उसे अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए आदेश देता है। इसी प्रकार, जब वह कोई ऐसा कार्य करता है जो उसके अधिकारक्षेत्र से बाहर है तब भी न्यायालय उसे उस कार्य को करने पर रोक लगा सकता है।

*उत्प्रेषण (Certiorari) :* इसमें उच्चतम न्यायालय किसी कनिष्ठ न्याय, अधिकरण या अधिकारी को यह आदेश दे सकता है जो प्रकरण उसके विचाराधीन है उससे संबंधित कार्यवाही के कागजात उच्चतम न्यायालय को भेजे। न्यायालय उन कागजातों की जाँच पड़ताल करता है और यदि आवश्यक हो तो उस प्रकरण को समाप्त कर देता है।

*निषेध (Prohibition) :* जब कोई न्यायालय अथवा अधिकरण किसी प्रकरण पर विचार कर रहा हो तो इस लेख के द्वारा उच्चतम न्यायालय उसे आदेश देता है कि वह उस प्रकरण पर विचार रोक दे।

*अधिकार पृच्छा (Quo Warranto) :* जब कभी कोई व्यक्ति अवैध रूप से किसी सार्वजनिक पद पर आसीन है तो न्यायालय उससे पूछता है कि वह किस विधि के अनुसार उस पद को धारण किए हुए है। यदि न्यायालय इस निर्णय पर पहुँचता है कि वह व्यक्ति अनाधिकार रूप में उस पद पर आसीन है तो न्यायालय उसे पद छोड़ने का आदेश दे सकता है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों को भी ये सारे लेख जारी करने के अधिकार प्राप्त हैं। किंतु यदि कोई व्यक्ति इस अनुच्छेद के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शरण लेता है तो वह उच्चतम न्यायालय में सीधे नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति में वह उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुध अपील के रूप में ही उच्चतम न्यायालय जा सकता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनुच्छेद 32 (1) के अंतर्गत संसद को यह अधिकार है कि वह विधि द्वारा बिना उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को प्रभावित किए, किसी भी अन्य न्यायालय को अधिकृत कर सके कि वह उच्चतम न्यायालय के किसी एक अथवा सभी अधिकारों का उपभोग अपनी स्थानीय सीमा क्षेत्र के भीतर कर सकता है।

*मौलिक अधिकारों के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू :* मौलिक अधिकारों के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू निम्नानुसार हैं :

क. मौलिक अधिकारों के दो वर्ग हैं। कुछ अधिकार केवल नागरिकों को प्राप्त हैं जब कि कुछ अधिकार नागरिकों तथा अनागरिकों, दोनों को समान रूप से प्राप्त हैं। अनुच्छेद 15, 16, 19, और 29 द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल नागरिकों को प्राप्त हैं जबकि अन्य अनुच्छेदों द्वारा प्रदत्त अधिकार नागरिकों तथा अनागरिकों को समान रूप से प्राप्त हैं।

ख. मौलिक अधिकार संविधान के अनुच्छेद 12 में उल्लिखित राज्य के विरुद्ध ही प्राप्त हैं। अनुच्छेद 12 के अनुसार इस अध्याय में वर्णित राज्य का अर्थ है संघ और राज्य सरकारों तथा स्थानीय स्वशासन से संबंधित संस्थाओं के विधायिका और कार्यपालिका के अंगों तक ही सीमित हैं। दूसरे शब्दों में, मौलिक अधिकार न तो

न्यायपालिका के और न ही अशासकीय संस्थाओं अथवा व्यक्तियों के विरुद्ध प्राप्त हैं।

ग. संसद को विधि द्वारा यह निर्धारित करने का अधिकार है कि सैन्य बलों तथा खुफ़िया विभागों में ये अधिकार किस सीमा तक प्राप्त होंगे।

घ. जब कभी संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण के कारण (किंतु सशस्त्र विद्रोह के आधार पर नहीं) आपातकाल की उद्घोषणा की जाती है तो संविधान के अनुच्छेद 19 में उल्लिखित स्वतंत्रता संबंधी अधिकार का क्रियान्वयन निलंबित रहता है। उपर्युक्त आधार पर आपातकाल की उद्घोषणा के उपरांत राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 359 के अंतर्गत एक दूसरा आदेश जारी कर अन्य मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन को भी स्थगित कर सकता है। इसका केवल एक अपवाद है। वह संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों (अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के संबंध में संरक्षण तथा प्राण और दैहिक स्वतंत्रता संबंधी संरक्षण) के क्रियान्वयन को स्थगित नहीं कर सकता।

ङ. जिन क्षेत्रों में मार्शल लॉ घोषित हो वहाँ शांति और व्यवस्था स्थापित करने के लिए जो राज्याधिकारी कार्य करते हैं, संसद उनकी क्षति-पूर्ति की व्यवस्था विधि द्वारा कर सकती है।

च. मूल संविधान में मौलिक अधिकारों की एक श्रेणी, संपत्ति के अधिकार, का प्रावधान भी था किंतु संविधान के 44 वें संशोधन द्वारा 1978 में इसका लोप कर दिया गया। इस अधिकार के कारण तत्कालीन शासकों के लिए कई समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं। चूँकि यह अधिकार तत्कालीन सरकार के सामाजिक, आर्थिक सुधार कार्यक्रमों में बाधक बन रहा था अतः उसे मौलिक अधिकारों की सूची से हटाकर केवल एक वैधानिक अधिकार बना दिया गया।

छ. संविधान के अनुच्छेद 13 में व्यवस्था है कि राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो किसी मौलिक अधिकार को छीनती हो या उसमें कमी करती हो। इस संबंध में एक विवाद यह उठा कि जिस विधि द्वारा संविधान में संशोधन किया जाता है, क्या अनुच्छेद 13 की व्यवस्था उस पर भी लागू होगी? दूसरे शब्दों में, प्रश्न यह उठा कि यदि किसी संविधान संशोधन अधिनियम के द्वारा किसी मौलिक अधिकार को छीना जाता है या उसमें कमी की जाती है तो क्या ऐसा संविधान संशोधन अधिनियम भी अवैध होगा? प्रारंभ में उच्चतम न्यायालय का यह मत था कि अनुच्छेद की व्यवस्था, संविधान के अनुच्छेद 368 के अंतर्गत पारित संविधान संशोधन अधिनियम पर लागू नहीं होगी। किंतु कालांतर में उच्चतम न्यायालय के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया और उसने कहा किसी संविधान के अनुच्छेद 13 द्वारा लगाया गया प्रतिबंध संविधान संशोधन अधिनियम पर भी लागू होगा। इसके कारण देश में एक बड़ा विवाद उत्पन्न हो गया। इस विवाद का अंत करने के लिए संसद ने 1971 में चौबीसवाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम में यह स्पष्ट कर दिया गया कि संविधान के अनुच्छेद 13 का प्रतिबंध संविधान संशोधन अधिनियम पर लागू नहीं होगा।

इस चौबीसवें संविधान संशोधन अधिनियम की वैधता को उच्चतम न्यायालय में, केशवानन्द भारती के प्रकरण में चुनौती दी गई। उच्चतम न्यायालय ने इस अधिनियम की वैधता को स्वीकार कर लिया किंतु साथ में यह शर्त भी लगा दी कि संसद संविधान में ऐसा कोई संशोधन नहीं कर सकती जो संविधान की मूल संरचना के विरुद्ध हो।

उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट नहीं किया कि संविधान की मूल संरचना से उसका क्या अभिप्राय है। यद्यपि संविधान की मूल संरचना के जिन दृष्टांतों का उल्लेख उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में किया गया, वे निम्नानुसार हैं : 1. संविधान की सर्वोच्चता, 2. राज्य का गणतांत्रिक और शासन का लोकतांत्रिक स्वरूप, 3. संविधान की पंथ निरपेक्ष प्रकृति, 4. विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बीच शक्ति पृथक्करण एवं 5. संविधान की संघीय प्रकृति।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि न्यायालय ही हर प्रकरण में यह निश्चित करेंगे कि कोई विधि संविधान की मूल संरचना के अनुरूप है अथवा नहीं।

## मौलिक कर्त्तव्य

आधुनिक काल में विश्व के संविधानों में साधारणतया कर्त्तव्यों की व्यवस्था नहीं होती। बहुत कम संविधान ऐसे हैं जिनमें ऐसा प्रावधान होता है। प्राचीन काल की स्थिति इसके ठीक विपरीत थी। उन दिनों अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक बल दिया जाता था। उस समय मान्यता यह थी कि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करेगा तब अधिकार स्वतः सुरक्षित रहेंगे। 1976 में भारतीय संसद की यह धारणा बनी कि भारतीय संविधान में मौलिक कर्त्तव्यों की सूची का प्रावधान होना चाहिए। तदनुकूल 1976 का 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित हुआ, जिसके द्वारा एक नया भाग चार (क) तथा एक नया अनुच्छेद 51 (क) भारतीय संविधान में जोड़े गए। नए भाग का शीर्षक मौलिक कर्त्तव्य रखा गया तथा इसमें 10 मौलिक कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है। ये 10 कर्त्तव्य हैं : भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह :

1. संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान का आदर करे
2. स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे
3. भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,
4. देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,
5. भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं,
6. हमारी सामासिक (composite) संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,
7. प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं उनकी रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे,
8. वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

9. सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे,
10. व्यक्ति और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाईयों को छू ले।

अपेक्षाएँ

यदि हम उपर्युक्त कर्त्तव्यों का विश्लेषण करें तो इनमें अंतर्निहित अपेक्षाओं का पता चलता है। ये अपेक्षाएँ हैं :

*संविधान का पालन :* प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह संविधान का पालन करे। इसका अर्थ यह हुआ कि वह संविधान के प्रावधानों के अनुसार आचरण करे। उसे ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए, जिसका निषेध संविधान करता हो। संविधान द्वारा किए गए कुछ महत्त्वपूर्ण निषेध इस प्रकार हैं : अस्पृश्यता का पालन निषिद्ध है (अनुच्छेद 17) , मानव का क्रय विक्रय करना मना है (अनुच्छेद 23) , श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं शक्ति का पालन एवं बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग (अनुच्छेद 39) निषिद्ध है, तथा गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं का वध वर्जित है (अनुच्छेद 48)।

*संवियान के आदर्शों का सम्मान :* संविधान के आदर्शों का उल्लेख इसकी प्रस्तावना में किया गया है। ये आदर्श हैं : देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार,अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता तथा व्यक्ति की गरिमा, राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाले भ्रातृत्व का विकास।

*संविधान की संस्थाओं का सम्मान :* 'संविधान की प्रमुख संस्थाएँ है राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद्, प्रधानमंत्री, संसद, उच्चतम न्यायालय,महान्यायवादी, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, संघीय एवं राज्यों के लोक सेवा आयोग, निर्वाचन आयोग, राज्यपाल, मुख्यमंत्री, उच्च न्यायालय इत्यादि।

*राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का सम्मान :* राष्ट्र ध्वज और राष्ट्र गान के सम्मान के संबंध में सरकार के द्वारा कुछ नियम बनाए गए हैं। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह इन नियमों का पालन करे। उदाहरणार्थ, एक नियम यह है कि जब राष्ट्र ध्वज फहराया जाए या राष्ट्र गान गाया जाए तब प्रत्येक नागरिक को सावधानी की मुद्रा में स्थिर रहना चाहिए, उसे न तो हिलना डुलना चाहिए न बातचीत करनी चाहिए।

*राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम को प्रेरित करने वाले उच्चादर्शों को हृदय में सँजोना तथा उनका पालन करना :* स्वाधीनता संग्राम के दौरान हमारे नेताओं ने कुछ उच्च आदर्श स्थापित किए। इन आदर्शों का पालन करना सभी नागरिकों का कर्त्तव्य है। कुछ महत्त्वपूर्ण उच्चादर्श हैं : अस्पृश्यता का निवारण, उत्पीडन से महिलाओं की मुक्ति, राष्ट्रीय एकता, अनेकता में एकता उपनिवेशवाद का विरोध, साम्राज्यवाद का विरोध, प्रजातिवाद का विरोध ; लोकतंत्र तथा पंथ निरपेक्षता आदि के मूल्यों का परिपालन।

*भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा एवं उसे अक्षुण्ण बनाए रखना :* प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता जैसे राष्ट्रीय हितों को प्राथमिकता दे। धर्म, प्रजाति, भाषा, जाति, लिंग तथा जन्म-स्थान आदि को

गौण माना जाए। उसे ऐसा कोई कार्य नही करना चाहिए जिससे राष्ट्र की सुरक्षा खतरे में पड़े। देश की प्रतिरक्षा जब कभी देश युद्ध-रत हो जाए अथवा देश पर कोई बाह्य आक्रमण हो जाए तो प्रत्येक नागरिक को अपने देश की रक्षा के लिए आगे आना चाहिए तथा आवश्यकता पड़ने पर सैन्य सेवा के लिए भी तत्पर रहना चाहिए।

*महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध प्रचलित कुप्रथाओं का परित्याग :* युगों से भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति गौण एवं हेय रही है। बाल एवं भ्रूण हत्या, दहेज और सती प्रथा कुछ ऐसी कुप्रथाएँ थीं जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध थीं। प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि वह ऐसी कुप्रथाओं का परित्याग करे।

यद्यपि हमारे यहाँ प्रजाति, धर्म, रीतिरिवाज पर आधारित सांस्कृतिक भिन्नता है तथापि सभी संस्कृतियों में एक मौलिक एकता भी विद्यमान है। ऐसा इसलिए संभव हो पाया क्योंकि भारतीय जनमानस सामंजस्यवादी है। यही कारण है कि समाज के एक वर्ग की संस्कृति दूसरे वर्ग की संस्कृति को काफी हद तक प्रभावित करती है। हमें इस परंपरा का परिरक्षण करना चाहिए। प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह सामासिक संस्कृति के विकास में सहयोग दे।

*प्राकृतिक पर्यावरण का रक्षण और संवर्धन :* नैसर्गिक साधनों की दृष्टि से भारत एक धनाढ्य देश रहा है। किंतु जनसंख्या के दबाव तथा मनुष्यों की लोभप्रवृत्ति के कारण इन साधनों का इतना असंतुलित दोहन किया गया कि यह एक अत्यंत जटिल समस्या बन गई। इस विषय में बहुमुखी एवं योजनाबद्ध विकास की आवश्यकता है। अतः वनों, झीलों, नदियों और वन्य जीवों का रक्षण और संवर्धन आवश्यक है तथा प्राणीमात्र के प्रति दया-भाव का विकास किया जाना चाहिए।

*वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद, ज्ञानार्जन की उत्सुकता तथा सुधार की भावना का विकास :* भारत एक ऐसा देश है जहाँ लोग अंधविश्वासों और अपशकुनों में भी आस्था रखते हैं। ऐसी धारणा में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। हमें विवेकशील दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा हमें जिज्ञासु वृत्ति से समाज को सुधारने का प्रयास करना चाहिए। हमारा स्वभाव तर्क-संगत होना चाहिए, जिससे कारण-कार्य में विवेकयुक्त संबंध स्थापित हो सके।

*मानवता का विकास :* हमें वैज्ञानिक तथा विवेकशील दृष्टिकोण ग्रहण करते समय मानवीय गुणों की उपेक्षा नहीं करना चाहिए।

*सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा तथा हिंसा से विरत रहना :* शासन की किसी विशिष्ट नीति के प्रति विरोध प्रकट करने हेतु कभी कभी लोग सार्वजनिक संपत्ति को क्षति पहुँचाने में संकोच नहीं करते। सर्व साधारण जनता को यह नहीं भूलना चाहिए कि वह संपत्ति उन लोगों की नहीं है जो शासन में सत्तारूढ़ हैं। यह लोगों की अपनी संपत्ति है जिसे वे नुकसान पहुँचाते हैं। इसी प्रकार, हिंसा भी विरोध प्रदर्शन का एक माध्यम बन गया है। इस मानसिकता में परिवर्तन की आवश्यकता है।

*उत्कर्ष की सर्वश्रेष्ठता की प्राप्ति :* हमारा राष्ट्र विश्व के विकसित देशों के शिखर पर उस समय तक नहीं पहुँच सकता जब तक प्रत्येक नागरिक वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से जीवन में सर्वोत्कृष्टता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नरत न हो। प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप से यह पूछना चाहिए कि उसने अपने

विशिष्ट क्षेत्र में सर्वश्रेष्टता प्राप्त करने के लिए क्या प्रयत्न किया?

### उपयोगिता

यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि मौलिक कर्त्तव्यों को संविधान का अभिन्न अंग बनाने से क्या लाभ है? प्रथम दृष्ट्या जब तक इनका उल्लंघन करने वालों को दंड देने के लिए विधियाँ नहीं बनायी जातीं तब तक इनके उल्लेख मात्र से कोई लाभ नहीं हो सकता। राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की भाँति इनका उपयोग भी संविधान की व्याख्या के लिए किया जा सकता है। न्यायपालिका ने जिस प्रकार राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की व्याख्या करते समय दो विरोधी सिद्धांतों के बीच अनुरूपता स्थापित करने के सिद्धांत का अवलंबन किया, उसी प्रकार मौलिक कर्त्तव्यों की व्याख्या करते समय भी वह उसी सिद्धांत का अनुपालन कर सकती है। विधायिका विधि निर्माण करते समय इनके कार्यान्वयन को आधार बना सकती है। कार्यों का औचित्य सिद्ध करने के लिए इन कर्त्तव्यों का सहारा ले सकती है।

## राज्य के नीति निदेशक तत्व

भारतीय संविधान की एक अनुपम विशेषता इसके चौथे भाग में दी गई है, जो राज्य की नीति के निदेशक तत्वों से संबद्ध है। भारतीय संविधान विश्व के उन कुछ गिने चुने संविधानों में से एक है, जिनमें इस प्रकार की व्यवस्था संविधान के एक अंग के रूप में दी गई है। जिन अन्य देशों में ऐसी व्यवस्था विद्यमान है, उनमें प्रमुख हैं : आस्ट्रिया, स्पेन, ब्राजील, फ्रांस, इटली, वर्मा तथा पश्चिमी जर्मनी। किंतु भारतीय संविधान में निर्माताओं को इन नीति निदेशक तत्वों को संविधान में सम्मिलित करने की प्रेरणा आयरलैण्ड से प्राप्त हुई। संविधान निर्माताओं द्वारा इस प्रकार की व्यवस्था को संविधान में रखने का प्रयोजन था कि वे सरकारों के पथ-प्रदर्शन के लिए कुछ सिद्धांत निर्धारित करना चाहते थे। अपनी नीतियाँ निर्धारित करते समय सरकारों से यह आशा की जाती है कि वे नीति निर्धारण के समय इन निदेशक तत्वों को ध्यान में रखें।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हमारे नेताओं ने स्वतंत्र नागरिकों को दिए जाने वाले मौलिक अधिकारों के संबंध में कुछ वायदे किए थे। उन मौलिक अधिकारों में केवल नागरिक और राजनीतिक अधिकार ही नहीं थे, वरन् उनमें सामाजिक और आर्थिक अधिकारों का भी उल्लेख था। किंतु जब भारत स्वतंत्र हुआ तो हमारे नेताओं को ऐसा लगा कि वे कुछ सामाजिक और आर्थिक अधिकारों , जिनका वायदा उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान किया था, तत्काल देना संभव नहीं होगा। किंतु साथ ही वे अपने वायदों से मुकरना भी नहीं चाहते थे।

वे इसका कोई समुचित समाधान चाहते थे। यह कार्य उन्होंने संविधान सभा की एक उपसमिति को सौंपा। उपसमिति ने सुझाव दिया कि मौलिक अधिकारों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जाना चाहिए। कुछ अधिकार तत्काल दिए जा सकते हैं तथा कुछ अधिकार भविष्य में उस समय दिए जा सकते हैं जब देश उन्हें देने में समर्थ हो। संविधान के दो भागों के उद्गम की यही कहानी है। संविधान का तीसरा भाग मौलिक अधिकारों से संबद्ध है जब कि चौथे भाग में राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की व्यवस्था की गई है।

### मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में अंतर

मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में मुख्य अंतर यह है कि मौलिक अधिकारों का

क्रियान्वयन न्यायालयों की सहायता से किया जा सकता है जब कि राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के लिए यह साधन सुलभ नहीं है। इन दोनों के बीच एक दूसरा अंतर यह है कि मौलिक अधिकार राज्य को कुछ कार्यों से विरत रहने के आदेश देते है जब कि राज्य की नीति के निदेशक तत्व राज्य को कुछ सकारात्मक कार्य करने की सलाह देते है। मौलिक अधिकारों के अंतर्गत प्रधानतया नागरिक और राजनैतिक अधिकारों का समावेश किया गया है जब कि नीति निदेशक तत्वों में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों का प्राधान्य है।

### नीति निदेशक तत्वों की प्रकृति

राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन के लिए न्यायालय की सहायता सुलभ नहीं है, अतः कुछ आलोचक इन्हें 'पवित्र विचार' अथवा 'नूतन वर्ष पर किए गए संकल्प' मात्र मानते हैं। ये विचार राज्य की नीति के निदेसक तत्वों की वैधानिक उपयोगिता के संबंध में आलोचकों की अज्ञानता ही प्रदर्शित करते हैं। यद्यपि ये तत्व न्यायालयों द्वारा क्रियान्वित नहीं किए जा सकते तथापि ये शासन के आधारभूत सिद्धांत हैं तथा शासन की तीनों शाखाओं : कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका, को इनकी महत्ता स्वीकार करनी पड़ती है। यथार्थ में, न्यायपालिका ने मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के बीच अनुरूपता के सिद्धांत का अवलंबन किया है। इतना ही नहीं, न्यायपालिका ने संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या करते समय इन निदेशक तत्वों का सहारा भी लिया है। मिनर्वा मिल्स प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश चंद्र चूड़ ने कहा कि भारतीय संविधान, अपने भाग 3 और 4 के संतुलन पर दृढ़ता पूर्वक आधारित है। इसमें किसी एक को प्रधानता देने का अर्थ संविधान की समरसता में विघ्न डालना है। मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के बीच जो समरसता एवं संतुलन है, वह संविधान की मूल संरचना का एक परमावश्यक तत्व है।

इसी प्रकार, कार्यपालिका ने भी अपने कार्यों के औचित्य के लिए इनका (अर्थात्, राज्य की नीति के निदेसक तत्वों का) सहारा लिया। उदाहरणार्थ, चंपाकम दोराईराजन बनाम मद्रास राज्य के मुकदमे में मद्रास सरकार ने अपने सांप्रदायिक आदेश के औचित्य को सिद्ध करने के लिए समाज के दुर्बल वर्गों के हितों से संबद्ध संविधान के अनुच्छेद 46 में उल्लिखित राज्य की नीति के निदेशक तत्व का सहारा लिया।

संसद ने भी अपने विधायी कार्यों के निष्पादन में निदेशक तत्वों का भरपूर सहारा लिया है। उदाहरणार्थ, भारत सरकार ने संविधान के प्रथम संशोधन अधिनियम 1951 तथा संविधान के चतुर्थ संशोधन अधिनियम 1955 के औचित्य के संदर्भ में क्रमशः शंकरी प्रसाद तथा गोलकनाथ मुकदमों में न्यायालय के सम्मुख यह कहा कि ये दोनों अधिनियम राज्य की नीति के निदेशक तत्वों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए बनाए गए हैं।

अब यदि हम इन विभिन्न निदेशक तत्वों पर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि ये राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक नीति से संबद्ध हैं।

### राजनैतिक नीतियों से संबद्ध निदेशक तत्व

राजनैतिक नीतियों से संबद्ध निदेशक तत्वों के अनुसार :

1. राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार

प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों, 2. भारत के समूचे राज्य क्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार संहिता प्राप्त कराने का प्रयास, 3. राज्य की लोक सेवाओं, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए राज्य कदम उठायेगा, 4. राज्य, (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का, (ख) राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मान पूर्ण संबंधों को बनाए रखने का, (ग) संगठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अंतर्राष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का तथा, (घ) अंतर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता (arbitration) द्वारा निपटाए जाने के लिए प्रोत्साहन देने का, प्रयास करेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राजनैतिक निदेशक तत्वों का अभिप्राय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है जिसमें सत्ता का विकेंद्रीकरण हो, समस्त नागरिक बिना किसी धार्मिक भेदभाव के एक समान व्यवहार संहिता से शासित हों, जहाँ पर शक्तियों के पृथक्करण द्वारा न्याय सुरक्षित हो तथा जहाँ राष्ट्रों के बीच संबंध अंतर्राष्ट्रीय विधि और सुरक्षा के सिद्धांतों पर आधारित हों।

### सामाजिक नीतियों से संबद्ध निदेशक तत्व

राज्य जनता के दुर्बल वर्गों, विशेषतया अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी सुरक्षा करेगा।

इस निदेशक तत्व का अभिप्राय एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है जिसमें अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य दुर्बल वर्गों को विशेष सुरक्षा प्रदान कर उन्हें राष्ट्रीय जीवन में समान सहभागी बनाना है।

### आर्थिक नीतियों से संबद्ध निदेशक तत्व

राज्य अपनी नीतियाँ इस प्रकार निर्धारित करे कि : 1. समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बँटे जिससे कि सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से संपादित हो, 2. आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे कि धन तथा उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी केंद्रीकरण न हो, 3. पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध हों, 4. पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान काम करने पर समान वेतन प्राप्त हो, 5. पुरुष और स्त्री श्रमिकों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के प्रतिकूल हों और जहाँ कार्य करने से उनके स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता हो, 6. राज्य किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों (undertakings), स्थापनों (establishments) या अन्य संगठनों के प्रबंध में श्रमिकों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधि या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा, 7. बच्चों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाएँ। बच्चों तथा युवकों की शोषण तथा नैतिक और भौतिक परित्याग (abandonment) की रक्षा की जाए, 8. राज्य अपने आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने, शिक्षा पाने और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अभाव की

दशाओं में लोगों के सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने की प्रभावी व्यवस्था करेगा, 9. राज्य काम की न्याय-संगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता की व्यवस्था करेगा, 10. राज्य, उपयुक्त विधि या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी श्रमिकों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन-स्तर और अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएँ तथा सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा, 11. राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा और विशेषतया, गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठायेगा, 12. राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि वैधानिक व्यवस्था इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो और वह, विशेषतया, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य नियोग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधि या योजना द्वारा या किसी अन्य रीति से निःशुल्क वैधानिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि आर्थिक निदेशक तत्व एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं जिसमें आर्थिक संसाधनों का केंद्रीकरण न हो, संपूर्ण आर्थिक व्यवस्था सामूहिक हित पर आधारित हो, जहाँ सब लोगों को काम पाने का, प्रबंध व्यवस्था में भागीदारी का, जीविका के पर्याप्त साधनों की प्राप्ति, निर्वाह मजदूरी पाने का, समान काम करने पर समान वेतन प्राप्त करने का, बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने का, काम की न्याय-संगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता प्राप्त करने, शिष्ट जीवन-स्तर प्राप्त करने का, अवकाश का संपूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाओं का, सामाजिक और सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का तथा निःशुल्क वैधानिक सहायता प्राप्त कराने का तथा कृषि और पशु पालन को आधुनिक और वैज्ञानिक आधार पर संगठित करने के उपयुक्त अवसर प्राप्त हों।

### शिक्षा तथा संस्कृति से संबंधित निदेशक तत्व

इस वर्ग में दो तत्व हैं। एक निदेशक तत्व व्यवस्था करता है कि राज्य इस संविधान के आरंभ से दस वर्ष की अवधि के भीतर सभी बच्चों को चौदह वर्ष की आयु पूरी करने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा। दूसरा निदेशक तत्व व्यवस्था करता है कि संसद द्वारा बनायी गई विधि द्वारा उसके अधीन राष्ट्रीय महत्त्व वाले घोषित किए गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरुचि वाले प्रत्येक स्मारक या स्थान या वस्तु का, यथा स्थिति, लुंठन ( लूटपाट करना ), विरूपण ( विकृत करना), विनाश, अपसारण (विस्थापित करना), व्ययन (विक्रय) या निर्यात से संरक्षण करना राज्य का दायित्व होगा।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि ये निदेशक तत्व एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करते हैं जिसमें प्राथमिक शिक्षा बच्चों को निःशुल्क मिले तथा प्राचीन सांस्कृतिक विरासत का परिरक्षण हो (अर्थात इन्हें लूटपाट, विकृत करने, स्थापित करने, उनका विक्रय करने अथवा निर्यात करने से बचाया जाए)।

### स्वास्थ्य-नीति से संबंधित निदेशक तत्व

इस वर्ग में दो निदेशक तत्व हैं। प्रथम तत्व यह व्यवस्था करता है कि राज्य अपने लोगों के पोषाहार-स्तर और जीवन-स्तर को ऊँचा करने और लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्त्तव्यों में मानेगा और विशेषतया मादक पेयों और स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा। दूसरा निदेशक तत्व व्यवस्था करता है कि राज्य देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि ये निदेशक तत्व एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करते हैं जिसमें प्रत्येक नागरिक को पौष्टिक खाद्य पदार्थ उपलब्ध हों और जो मादक पेयों, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के प्रयोग से परहेज कर तथा वनों और वन्य जीवों को सुरक्षित रख, पर्यावरण को परिरक्षित कर, अपने को स्वस्थ रखें और इस प्रकार अपने जीवन-स्तर को उन्नत करें।

संक्षेप में, राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का लक्ष्य एक नई समाज व्यवस्था स्थापित करना है। इस समाज व्यवस्था को भिन्न-भिन्न नामों से पुकार सकते हैं। कुछ लोग इसे समाजवादी तो कुछ लोग इसे उदारवादी नाम से संबोधित कर सकते हैं। कुछ को इसमे गाँधीवाद की झलक दिखाई पड़ सकती है, तो कुछ को इसमें आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में लोकतंत्र का विस्तार दृष्टिगोचर हो सकता है। इन निदेशक तत्वों की विषय-वस्तु का परीक्षण करने से पता चलता है कि हमारे संविधन निर्माता उदारवादियों के लोकतंत्र तथा फेबियन चिंतकों के समता संबंधी विचारों का समन्वय कर एक स्वर्णिम मध्यम मार्ग अपनाना चाहते थे। वे इस नवीन समाज व्यवस्था की स्थापना लोकतांत्रिक साधनों से करना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने राज्य के लिए वह अनिवार्य बना दिया कि वह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लोकतांत्रिक उपायों का अवलंबन करे। हमारे संविधान निर्माता उदारवाद, समाजवाद और गाँधीवाद, इन तीन विचार धाराओं से प्रभावित थे और इन तीनों का सर्वोत्तम संगम करना चाहते थे। ऐसी समाज व्यवस्था का सर्वोत्तम और विवाद विहीन शीर्षक 'न्यायोचित समाज व्यवस्था' ही हो सकता है।

## अभ्यास

1. भारतीय नागरिकों को प्रदत्त किन अधिकारों को मौलिक अधिकार कहा जाता है? उनके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. समता संबंधी अधिकार के कौन से उपबंध हैं?
3. भारतीय नागरिकों को प्रदत्त स्वंतत्रता संबंधी अधिकारों को संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. धार्मिक स्वतंत्रता संबंधी अधिकार का पंथनिरपेक्षता से क्या संबंध है?
5. शिक्षा एवं संस्कृति से संबंधित कौन से अधिकार भारतीय नागरिकों को प्रदान किए गए हैं?
6. संवैधानिक उपचारों से संबंधित अधिकार की क्या महत्ता है?
7. किन्हीं पाँच मौलिक कर्त्तव्यों की अपेक्षाओं पर प्रकाश डालिए।
8. राज्य की नीति के निदेशक तत्वों से क्या अभिप्राय है?
9. मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों में अंतर बताइए।
10. राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की प्रकृति का परीक्षण कीजिए।
11. किन्हीं तीन लेखों की व्याख्या कीजिए जिन्हें मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए उच्चतम न्यायालय को जारी करने का अधिकार प्राप्त है।
12. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
    - क. गिरफ़्तारी और निरोध के विरुद्ध संरक्षण।
    - ख. शोषण के विरुद्ध अधिकार ।
    - ग. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा।
    - घ. आर्थिक नीति से संबद्ध निदेशक तत्व।
    - ङ. सामाजिक नीतियों से संबद्ध निदेशक तत्व।
    - च. स्वास्थ्य नीतियों से संबद्ध निदेशक तत्व।

अध्याय 5

# केंद्रीय सरकार

## भारतीय संसद

भारतीय संघ राज्य की विधायी शक्ति भारत की संसद में सन्निहत है। संसद राष्ट्रपति, राज्य सभा और लोकसभा तीनों से मिलकर बनती है।

भारत का राष्ट्रपति संसद का एक अभिन्न अंग है। वह दोनों सदनों के सत्रों का आह्वान करता तथा लोकसभा को विघटित कर सकता है। उसकी स्वीकृति के बिना दोनों सदनों द्वारा पारित कोई भी विधेयक अधिनियम नहीं बन सकता। उसे किसी भी सदन को अथवा दोनों के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करने का अधिकार प्राप्त है। वह किसी भी सदन में विचाराधीन विधेयक से संबद्ध सदन को संदेश दे सकता है और सदन को उस संदेश पर विचार करना पड़ता है।

राष्ट्रपति लोक सभा के आम चुनाव के बाद होने वाले प्रथम अधिवेशन में तथा प्रत्येक वर्ष के प्रारंभ में होने वाले प्रथम अधिवेशन में दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करता है। इस अधिवेशन में वह सरकार की नीतियों और कार्यक्रम संबंधी ब्यौरों की घोषणा करता है। दोनों सदन ऐसे संबोधन में उठाए गए मुद्दों पर विचार करते हैं।

जब कभी संसद के दोनों सदनों का सत्र न चल रहा हो और राष्ट्रपति को ऐसा आभास हो कि ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हों कि तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता है तो वह इस संबंध में अध्यादेश जारी कर सकता है। इस अध्यादेश को वही बल प्राप्त रहता है जो संसद द्वारा पारित एक अधिनियम को प्राप्त है। ऐसे अध्यादेश को संसद के सत्रारंभ से 6 सप्ताह के भीतर दोनों सदनों की स्वीकृति नहीं मिलती तो अध्यादेश निष्प्रभावी हो जाता है।

### राज्यसभा

राज्यसभा संसद का उच्च सदन है। इसमें कुल 250 सदस्य होते हैं। इनमें से 12 सदस्यों को राष्ट्रपति ऐसे व्यक्तियों में से मनोनीत करता है जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और समाज सेवा के क्षेत्र में विशेष ज्ञान अथवा व्यावहारिक अनुभव प्राप्त हो। शेष 238 सदस्य राज्यों तथा संघीय क्षेत्रों के प्रतिनिधि होते हैं।

राज्यसभा में प्रत्येक राज्य से आए सदस्यों का निर्वाचन उस राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत-पद्धति द्वारा होता है। प्रत्येक संघीय क्षेत्र के सदस्यों का निर्वाचन संसद की विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार है। 1950 के लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम के अनुसार प्रत्येक संघीय क्षेत्र के लिए एक निर्वाचक मंडल के गठन की व्यवस्था की गई है।

भारत का कोई नागरिक, जिसकी आयु 30 वर्ष से कम न हो तथा जिसके पास संसद द्वारा निर्धारित योग्यताएँ हों वह राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित किया जा सकता है। किंतु ऐसा कोई व्यक्ति जो राज्य के अधीन (भारत सरकार/राज्य सरकार अथवा संघीय क्षेत्र के किसी मंत्री पद को छोड़कर) किसी लाभ के पद को धारण किए हो अथवा जो विकृतचित्त हो या

जो अनुन्मोचित दिवालिया हो, वह निर्वाचन में उम्मीदवार नहीं हो सकता।

राज्य सभा के प्रत्येक सदस्य की कार्यावधि 6 वर्ष है किंतु प्रति दूसरे वर्ष एक तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते हैं तथा उनके स्थान पर नवीन सदस्यों का निर्वाचन होता है। यह एक स्थायी सदन है अर्थात् इस सदन का कभी विघटन नहीं हो सकता।

भारत का उपराष्ट्रपति राज्य सभा का पदेन सभापति होता है अर्थात् जब तक वह उपराष्ट्रपति पद पर आरूढ़ रहता है तब तक ही वह राज्य सभा का सभापति रहता है। वह राज्य सभा की बैठकों की अध्यक्षता तथा उसका कार्य संचालन करता है। उसकी अनुपस्थिति में उपसभापति, जिसका निर्वाचन सदन द्वारा होता है। सभापति के दायित्वों का निर्वाह करता है।

राज्य सभा की किसी भी सामान्य बैठक के लिए सदस्यों का दसवाँ भाग गणपूर्ति माना जाएगा।

**लोकसभा**

लोकसभा संसद का प्रथम अथवा निम्न सदन है। इसके 530 सदस्यों का निर्वाचन विभिन्न राज्यों की जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है तथा 20 सदस्यों का निर्वाचन संघीय क्षेत्रों, संसद की विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुरूप होता है। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के स्थान उनकी जनसंख्या के अनुपात में सुरक्षित रखे जाते हैं। यदि आम चुनाव के बाद राष्ट्रपति को ऐसा लगे कि आंग्ल भारतीय समुदाय को लोकसभा में समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ है तो वह इस समुदाय के किन्हीं दो व्यक्तियों को लोकसभा में मनोनीत कर सकता है।

प्रत्येक राज्य के सदस्यों की संख्या प्रायः उसकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित की जाती है। प्रत्येक राज्य को विभिन्न क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों में इस प्रकार बाँटा जाता है कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्धारित सदस्य संख्या और उसकी जनसंख्या का अनुपात पूरे राज्य में लगभग एक समान हो।

लोक सभा के सदस्य पूर्ण मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किए जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को जो भारतीय नागरिक है और जिसने 18 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है तथा जिसका नाम मतदाता सूची में सम्मिलित है लोकसभा के निर्वाचन में मतदान करने का अधिकार है।

लोकसभा के निर्वाचन में खड़े होने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह भारतीय नागरिक हो। उसकी आयु कम से कम 25 वर्ष हो तथा उसमें वे सब योग्यताएँ हों जो संसद विधि द्वारा निर्धारित करे। कोई भी व्यक्ति लोकसभा का सदस्य बनने में असमर्थ होगा यदि यह भारत सरकार या राज्य सरकार के आधीन किसी लाभ के पद को धारण करता हो। जो विकृतचित्त हो, अनुन्मोचित दिवालिया हो जो भारतीय नागरिक न हो या जिसने किसी विदेश की नागरिकता ग्रहण कर ली हो या जिसे संसद की किसी विधि द्वारा अयोग्य घोषित कर दिया गया हो।

लोकसभा का कार्यकाल पाँच वर्ष है किंतु राष्ट्रपति इससे पूर्व भी इसे विघटित कर सकता है। जब संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत घोषित आपातकाल विद्यमान हो तो राष्ट्रपति एक बार में एक वर्ष के लिए लोकसभा का कार्य-काल बढ़ा सकता है।

सदन की बैठक की अध्यक्षता करने के लिए एक सदस्य को अध्यक्ष चुना जाता है जो इसका कार्य संचालन करता है। उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष जिसका चुनाव भी सदन करता है, अध्यक्ष का काम

करता है। अध्यक्ष के कार्य हैं : वह लोकसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है तथा इसकी समस्त कार्यवाहियों का संचालन करता है। इसका केवल एक अपवाद है, जब उसे उसके पद से हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो तब वह इस कार्य से विरत रहता है। वह सदन के कार्यक्रम के क्रम का निर्धारण करता है, वह सदस्यों के भाषण की समय-सीमा निर्धारित करता है, प्रत्येक सदस्य अपना भाषण उसे ही संबोधित करके प्रारंभ करता है। वह सदन में अनुशासन कायम रखता है, वह सदन में असंसदीय भाषा के प्रयोग पर अंकुश लगाता है, यदि कोई सदस्य उसके निर्णयों का उल्लंघन करता है तो वह उसकी सदस्यता को स्थगित करता अथवा उसे सदन छोड़ने के लिए कहता अथवा उसको सदन के मार्शल द्वारा सदन की बैठक से हटाने की आज्ञा दे सकता है। यदि कभी सदन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाए अथवा सदस्य अनुशासन का उल्लंघन करे तो वह सदन की बैठक को स्थगित कर सकता है। वह आचरण के नियमों का पालन करवाता है। कभी किसी प्रस्ताव अथवा प्रश्न को विचारार्थ स्वीकार किया जाए अथवा नहीं, इस पर विवाद छिड़ जाए तो वह इस पर अपना निर्णय देता है। वह सदस्यों के विशेषाधिकारों के हनन से उनकी रक्षा करता है।

जब कभी किसी विषय पर सदन में पक्ष और विपक्ष को समान मत प्राप्त हों तो वह निर्णायक मत देता है। जब कभी कोई सदस्य कार्य-स्थगन प्रस्ताव रखता है तो इसे स्वीकार किया जाए अथवा नहीं इसका निर्णय भी वही करता है। कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं इसका निर्णय वही करता है। जब कभी संसद के दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन हो तो वह उसकी अध्यक्षता करता है।

सदन की किसी भी सामान्य बैठक के लिए सदस्यों की संख्या का दसवाँ भाग गणपूर्ति माना जाएगा।

### अधिकार और कार्य

सदन का प्रमुख कार्य विधि निर्माण है। इसे संघ सूची से संबद्ध तथा अवशिष्ट विषयों (वे विषय जिनका उल्लेख तीनों सूचियों में से किसी में भी न हो) पर विधि निर्माण का अनन्य अधिकार है किंतु यह समवर्ती सूची में विधि निर्माण शक्ति को राज्य की विधायिका के साथ मिलकर करती है। इस सूची में दोनों विधि निर्माण का कार्य करते है, यदि दोनों की विधियों में परस्पर विरोध हो तो जिस सीमा तक राज्य की विधि संसदीय विधि के विरुद्ध होगी, संसदीय विधि को वरीयता मिलेगी।

### विधि-निर्माण प्रक्रिया

संसद में प्रस्तुत और पारित विधेयकों को दो वर्गों साधारण अथवा गैर धन विधेयक तथा धन विधेयक, में वर्गीकृत किया जाता है। धन विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया साधारण विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया से भिन्न है। साधारण विधेयक दोनों सदनों में से किसी भी सदन में प्रस्तुत किया जा सकता है। प्रत्येक साधारण विधेयक को अधिनियम बनने से पूर्व निम्नलिखित प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है।

प्रस्तावित विधेयक का प्रारूप सदन के सचिवालय में भेजा जाता है। लोकसभा का अध्यक्ष अथवा राज्य सभा का सभापति, जैसी स्थिति हो, सदन की कार्य परामर्शदात्री समिति से परामर्श कर कोई एक दिन तथा समय निर्धारित करता है जब सदन में विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। निर्धारित दिवस तथा समय पर

प्रस्तावक सदन की अध्यक्षता करने वाले अधिकारी से विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति माँगता है। उसकी स्वीकृति मिलने के उपरांत प्रस्तावक विधेयक का शीर्षक पढ़ता तथा एक संक्षिप्त भाषण देता है जिसमें विधेयक के मूल उद्देश्यों पर प्रकाश डाला जाता है। यदि कोई सदस्य उसका विरोध नहीं करता है तो यह मान लिया जाता है कि विधेयक का प्रथम वाचन संपन्न हो गया। साधारणतया इस स्तर पर विरोध नहीं होता क्योंकि प्रथम वाचन में विधेयक के पारित होने का केवल इतना ही अर्थ है कि सदन ने विधेयक पर विस्तार से विचार करना स्वीकार कर लिया। किंतु कभी कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जब सदन विधेयक पर विचार करने तक के लिए तैयार नहीं होता है। ऐसी स्थिति में अध्यक्ष विधेयक पर पूरा वाद-विवाद तथा मतदान करवाता है। यदि सदन विधेयक को अपनी मंजूरी दे देता है तो यह मान लिया जाता है कि सदन ने प्रथम वाचन में विधेयक को मान लिया है।

कुछ अंतराल के बाद (साधारणतया दो दिनों के बाद) प्रस्तावक फिर से विधेयक को प्रस्तुत करता है। इस स्तर को द्वितीय वाचन के नाम से संबोधित किया जाता है। इसमें पहले सामान्य वादविवाद होता है तत्पश्चात् सदन तीन विकल्पों में से एक का चुनाव करता है : 1. सदन विधेयक पर विस्तृत चर्चा करने का निर्णय लेता है, ऐसी स्थिति में विधेयक की धारा उपधारा पर विचार तथा मतदान होता है। 2. सदन यह निर्णय लेता है कि इस पर लोकमत जानने के लिए इस विधेयक का प्रचार किया जाए, ऐसी स्थिति में विधेयक शासकीय गजट में प्रकाशित होता है तथा इस पर जनता के मत आमंत्रित किए जाते हैं। सदन जनमत की पृष्ठभूमि में विधेयक पर विस्तार से प्रत्येक धारा एवं उपधारा पर विचार तथा मतदान करता है। 3. सदन के पास एक विकल्प यह भी है कि यह विधेयक को एक प्रवर समिति के पास भेज दे जिसमें सदन के वे सदस्य होते हैं जो उस विषय में विशेष रुचि रखते हैं। इस समिति में 20-30 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति अध्यक्ष करता है। यह समिति विधेयक की गहराई से जाँच पड़ताल करती है तथा उसमें यदि आवश्यक हो तो संशोधनों की संस्तुति कर अपनी रिपोर्ट पेश करती है। सदन इस रिपोर्ट की पृष्ठभूमि में विधेयक पर विस्तार से प्रत्येक धारा एवं उपधरा पर चर्चा कर मतदान करता है। यदि सदन विधेयक को स्वीकार कर लेता है तो यह मान लिया जाता है कि द्वितीय वाचन में विधेयक पारित हो गया है। कुछ अंतराल के बाद विधेयक अंतिम अथवा तृतीय वाचन के लिए सदन के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर विधेयक पर सामान्य चर्चा होती है तथा कुछ शाब्दिक हेर फेर के अतिरिक्त कोई संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता । यदि सदन इस स्तर पर विधेयक को स्वीकार कर लेता है तो विधेवक दूसरे सदन के पास भेज दिया जाता है।

दूसरे सदन में भी उपर्युक्त समूची प्रक्रिया दोहराई जाती है। यदि दूसरा सदन भी इसे स्वीकार कर लेता है तो विधेयक राष्ट्रपति के पास उनकी सहमति के लिए भेज दिया जाता है। यदि दोनों सदनों में विधेयक के संबंध में मतभेद उत्पन्न हो जाए तो राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। संयुक्त अधिवेशन में विधेयक के बहुमत से पारित हो जाने पर यह मान लिया जाता है कि दोनों सदनों ने विधेयक को स्वीकार कर लिया है।

## वित्तीय विषयों से संबंधित प्रक्रिया

धन जिसके पास है सत्ता उसी के पास है। यह कहावत संसद पर पूर्णतया लागू होती है। संसद संघ सरकार की वित्तीय व्यवस्था को पूर्णतया नियंत्रित करती है। प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारंभ में संसद के सम्मुख वार्षिक वित्तीय विवरण अथवा बजट प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें शासन की आय और व्यय का विवरण रहता है।

बजट दो भागों में तैयार किया जाता है। रेलवे बजट और सामान्य बजट। रेलवे बजट रेलमंत्री के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है जब कि सामान्य बजट वित्त मंत्री द्वारा रखा जाता है।

बजट में उस खर्च को अलग से दिखाया जाता है जिसे भारत की संचित निधि से निकाला तो जाता है किंतु जिस पर सदन न केवल विचार विमर्श करता वरन् उस पर मतदान भी करता है। जिन खर्चों को भारत की संचित निधि से वसूल किया जाता है तथा जिन पर सदन मतदान नहीं करता वे इस प्रकार हैं : भारतीय राष्ट्रपति, राज्यसभा के सभापति और उप सभापति, लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष। भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतन और भत्ते तथा भारत सरकार की ऋण वसूली से संबद्ध खर्चे। जिन दूसरे खर्चों को भारत की संचित निधि से निकाला जाता है वे लोकसभा के सम्मुख अनुदानों की माँगों के रूप में रखे जाते हैं।

बजट प्रस्तुत करते समय वित्तमंत्री लोक सभा के सम्मुख एक भाषण देता है जिसमें वह देश की वित्तीय स्थिति की विवेचना करता है तथा शासन की वित्तीय नीति की व्याख्या करता है। बजट के साथ एक वित्त विधेयक भी प्रस्तुत किया जाता है जिसमें नए करों को लगाने अथवा पुराने करों में वृद्धि अथवा कमी के प्रस्ताव सम्मिलित होते हैं।

वित्तमंत्री के बजट भाषण के उपरांत पूरे बजट पर एक सामान्य चर्चा होती है। चर्चा के उपरांत सदन के सम्मुख बजट के प्राक्कलनों (estimates) को अनुदानों की माँगों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक विभाग का मंत्री अपने विभाग से संबंधित माँगों को सदन के सम्मुख रखता है। सदन इन माँगों पर चर्चा करता है तथा उन्हें स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करता है। वह उनमें कटौती भी कर सकता है।

सदन को माँगों में वृद्धि करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। जब लोकसभा में सभी माँगों पर मतदान पूर्ण हो जाता है तब दोनों प्रकार के (भारत की संचित निधि से वसूले गए तथा उससे निकाले गए) खर्चों को एक साथ मिलाकर उन्हें एक वार्षिक विनियोग विधेयक के रूप में लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तथा लोकसभा उसे उसी प्रकार पारित करती है जैसे कोई अन्य विधेयक पारित किया जाता है। तत्पश्चात् लोकसभा का अध्यक्ष उसे धन विधेयक के रूप में प्रमाणित करता है।

कोई विधेयक उस समय धन विधेयक के रूप में मान्यता प्राप्त करता है जब 1. वह किसी कर का अधिरोपण (imposition) उत्सादन (abolition) परिहार (remission) परिवर्तन (alteration) या विनियमन (regulation) करता हो। 2. भारत सरकार द्वारा उधार लेने का या कोई प्रत्याभूति (guarantee) देने का विनिमय करता हो। 3. भारत की संचित निधि या आकस्मिकता (contingency) निधि की अभिरक्षा (custody) करता हो। 4. भारत की संचित निधि में से

धन का विनियोग करता हो। 5. भारत की संचित निधि या भारत के लोक लेखा की मद में धन प्राप्त करता हो। यदि कभी यह विवाद उठ खड़ा हो कि कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं तो इस विषय में लोकसभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम और सर्वमान्य होगा।

कोई धन विधेयक प्रारंभ में राज्य सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। जब लोकसभा किसी धन विधेयक को पारित कर देती है तो यह राज्य सभा के पास उसकी संस्तुति के लिए भेज दिया जाता है। राज्य सभा को उस विधेयक की प्राप्ति के 14 दिन के भीतर अपनी संस्तुति के साथ लोकसभा को लौटाना पड़ता है। यदि राज्य सभा उक्त विधेयक को 14 दिन के भीतर लोकसभा में नहीं लौटाती तो यह मान लिया जाता है कि जिस रूप में विधेयक को लोकसभा ने पारित किया, उसी रूप में राज्य सभा ने उसे पारित कर दिया है। यदि राज्यसभा द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों के साथ निर्धारित अवधि के भीतर लोकसभा को लौटा देती है तो लोकसभा को यह अधिकार है कि वह राज्यसभा द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों को स्वीकार करे अथवा न करे। तदुपरांत यह मान लिया जाता है कि उक्त विधेयक को दोनों सदनों ने पारित कर दिया। इसके पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति के पास उसकी सहमति के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति को उस पर अपनी सहमति देनी ही पड़ती है।

### कार्यपालिका पर नियंत्रण

मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। लोकसभा को मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का अधिकार प्राप्त है। जब कभी ऐसा प्रस्ताव पारित हो जाता है तो मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है।

संसद के दोनों सदन प्रश्न पूछकर, पूरक प्रश्न पूछकर अत्यावश्यक लोक महत्त्व के विषय पर चर्चा कर के ध्यान आकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत करके, कार्य-स्थगन प्रस्ताव पेश कर के, तथा लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, लोक उद्यम समिति, शासकीय आश्वासन समिति, विशेषाधिकार समिति, प्रदत्त विधान (subordinate legislation) समिति इत्यादि के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करते हैं। इनके कारण कार्यपालिका सदैव सतर्क रहती है।

### संवैधानिक संशोधन प्रक्रिया

भारतीय संविधान में किसी भी संशोधन के लिए संसद के किसी भी सदन में एक विधेयक प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे विधेयक को प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों के पूर्ण बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित होना आवश्यक है।

किंतु यदि ऐसा कोई संशोधन संविधान के संघीय स्वरूप को प्रभावित करने वाला हो तो उसकी पुष्टि कम से कम आधे राज्यों के विधान मंडलों से होनी आवश्यक है। संघीय स्वरूप को प्रभावित करने वाले तत्व नियमानुसार हैं: राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया, संघ या राज्य की कार्यपालिका शक्ति की सीमा, संघीय क्षेत्रों में उच्च न्यायालय स्थापित करने की संसदीय शक्ति, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के संगठन और शक्तियाँ, संघ और राज्यों में वित्तीय शक्तियों का वितरण, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व और संविधान में संशोधन करने की शक्ति तथा उसकी प्रक्रिया।

किंतु यदि ऐसा कोई संशोधन संविधान के संघीय स्वरूप को प्रभावित करने वाला हो तो उसकी कम से कम आधे राज्यों द्वारा पुष्टि हो जाती है। जब वह

विधेयक राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो उस पर वह अपनी सहमति दे देते हैं तथा तत्पश्चात् संविधान संशोधित हो जाता है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्तियाँ काफी व्यापक हैं। वह संविधान के किसी भी प्रावधान में वृद्धि या परिवर्तन कर सकती है तथा उसे समाप्त भी कर सकती है। किंतु उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार संसद संविधान की मूल संरचना में कोई संशोधन नहीं कर सकती।

### अन्य अधिकार

संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य, राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के साथ मिलकर एक निर्वाचक मंडल बनाते हैं जो राष्ट्रपति का निर्वाचन करता है। संसद के दोनों सदन महाभियोग के माध्यम से राष्ट्रपति को उसके पद से हटा सकते हैं। वे दोनों मिलकर उपराष्ट्रपति का भी निर्वाचन करते हैं। वे नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों तथा अन्य न्यायधीशों को भी एक विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा उनके पदों से हटा सकते हैं।

### संसदीय समितियाँ

चूँकि संसद के सदस्यों की संख्या इतनी अधिक होती है कि वह किसी भी कार्य को शीघ्रतापूर्वक संपादित नहीं कर सकती तथा उसके सामने कई ऐसे पेचीदा प्रश्न उठते हैं कि जिनका परीक्षण वह कुशलतापूर्वक नहीं कर सकती है, अतः इस समस्या के समाधान के लिए एक उपाय खोज निकाला गया और यह उपाय है संसदीय समितियों का गठन।

मोटे तौर पर ये समितियाँ दो प्रकार की होती हैं: अस्थायी समितियाँ और स्थायी समितियाँ। अस्थायी समितियाँ आवश्यकतानुसार बनाई जाती हैं तथा काम पूरा होने पर उनका अंत हो जाता है। स्थायी समितियाँ प्रत्येक वर्ष अथवा समय समय पर निर्वाचित अथवा नियुक्त की जाती हैं तथा उनका कार्य न्यूनाधिक निरंतर चलता रहता है।

### अस्थायी समितियाँ

अस्थायी समितियाँ आवश्यकतानुसार समय-समय पर लोक सभा या इसके अध्यक्ष के द्वारा बनाई जाती हैं। ये किसी विशिष्ट विषय की जाँच पड़ताल करती तथा उस पर अपनी रिपोर्ट देती हैं। इन समितियों की कोई संख्या निर्धारित नहीं होती। इनकी संख्या आवश्यकतानुसार घटती बढ़ती रहती है। प्रवर समितियों के सदस्यों की नियुक्ति सदन द्वारा की जाती है। प्रवर समिति प्रत्येक विधेयक की बारीकी से जाँच करती, उससे संबद्ध समस्त आँकड़े इकट्ठा करती तथा गवाहों के बयान लेती है। इसके उपरांत यह अपनी रिपोर्ट सदन को देती तथा कार्य संपूर्ण कर लेने के बाद इसका विघटन हो जाता है।

### स्थायी समितियाँ

स्थायी समितियों में तीन वित्तीय समितियाँ : लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति तथा लोक उद्यम समिति महत्त्वपूर्ण समितियाँ हैं जो सरकारी खर्च पर सतर्क दृष्टि रखती हैं।

*लोक लेखा समिति :* इसके 22 सदस्य होते हैं जिनमें से 15 लोक सभा द्वारा तथा 7 राज्य सभा द्वारा एक वर्ष के लिए निर्वाचित किए जाते हैं। राज्य सभा के सदस्यों को सह सदस्य माना जाता है तथा उन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं है। यह समिति भारत सरकार के लेखाओं के विनियोग की तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट की जाँच पड़ताल

करती है। समिति यह सुनिश्चित करती है कि सार्वजनिक धन का खर्च संसद के निर्णयों के अनुसार होता है तथा यह बर्बादी, फिजूलखर्ची, हानि, निरर्थक खर्चों अथवा सरकारी सेवाओं में वित्तीय अनियमित्ताओं की ओर ध्यान आकर्षित करती है।

*प्राक्कलन समिति :* इस समिति में 30 सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन प्रतिवर्ष लोकसभा करती है। इसके सदस्यों में से किसी एक को लोकसभाध्यक्ष इस समिति का सभापति नियुक्त करता है। यह समिति इन विषयों पर अपनी रिपोर्ट देती है कि सरकारी खर्च में कैसे कमी की जाए, संगठन में कैसे सुधार अथवा कुशलता लाई जाए तथा प्रशासन में कैसे सुधार किए जाएँ। यह समिति इस बात का भी परीक्षण करती है कि धन का विनियोग अनुमानित सीमा के अंदर किया गया है अथवा नहीं। यह समिति इस विषय पर भी सुझाव देती है कि संसद में रखे जाने वाले अनुमानों का क्या स्वरूप हो। यह प्रशासन में कुशलता लाने तथा खर्च में कमी करने के लिए वैकल्पिक नीतियों के भी सुझाव देती है।

*लोक उद्यमों से संबंधित समिति :* इस समिति में 16 सदस्य होते हैं जिनमें से 10 लोकसभा तथा 5 राज्यसभा द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। इसके सभापति की नियुक्ति लोकसभाध्यक्ष द्वारा की जाती है। यह समिति लोक उद्यमों के लेखाओं की जाँच पड़ताल करती, उनके कार्यों तथा वित्तीय विषयों का परीक्षण करती तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों का परीक्षण करती है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि संसद भारतीय लोकतंत्र की एक अत्यंत शक्तिशाली संस्था है। यह भारत की सर्वोच्च विधि निर्मात्री संस्था है जिसके प्रति संघीय मंत्रिपरिषद् उत्तरदायी होती है। यह संविधान में संशोधन भी कर सकती है किंतु इसका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि यह सर्वशक्तिमान है। यद्यपि भारत में संसदीय लोकतंत्र है तथापि हमने संसद के द्वारा पारित अधिनियमों की न्यायिक समीक्षा की व्यवस्था भी की है जिसके अनुसार न्यायपालिका संसद के अधिनियमों को अवैध घोषित कर सकती है। यथार्थ में हमारे संविधान में शासन के विधायी तथा न्यायपालिका अंगों में परस्पर प्रतिबंधों और संतुलनों का सिद्धांत अपनाया गया है।

## भारतीय राष्ट्रपति

संघ सरकार की कार्यपालिका संबंधी समस्त शक्तियाँ भारतीय राष्ट्रपति में निहित हैं, जिनका प्रयोग वह प्रत्यक्ष अथवा अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करता है।

### निर्वाचन प्रक्रिया

भारतीय राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल के द्वारा होता है जिसके सदस्य राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्य तथा संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य होते हैं। निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा होता है। प्रत्येक निर्वाचक के मत का मूल्य निर्धारित करने के लिए संविधान में एक विशिष्ट प्रक्रिया की व्यवस्था की गई है। प्रत्येक राज्य की विधानसभा के किसी निर्वाचित सदस्य के मत का मूल्य इस प्रकार निर्धारित किया जाता है : उस राज्य की कुल जनसंख्या को उस राज्य की विधान सभा के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग देकर जो भजन फल आए, उसमें पुनः 1000 से भाग दिया जाता है। अब जो भजनफल आता है वह उस विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मत का मूल्य होगा। उदाहरणार्थ

किसी राज्य की जनसंख्या 60,00,000 है और उसकी विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों की संख्या 400 है तो इस विधि के अनुसार प्रत्येक मत का मूल्य होगा : 60,00,000 % 400 = 15,000 % 1000 = 15, दूसरे शब्दों में उस राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य का मत तो एक ही होगा किंतु उस मत का मूल्य 15 होगा। इस प्रकार, समस्त राज्यों की विधान सभाओं के समस्त निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्य का जोड़ किया जाएगा। जो संख्या इस प्रकार उपलब्ध होगी, वह निर्वाचक मंडल में राज्य विधान सभाओं के मतदाताओं के मूल्य का प्रतिनिधित्व करेगी।

राज्य विधान सभाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली उपर्युक्त कुल मत संख्या में संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या का भाग दिया जाएगा। जो भजनफल आएगा वह संसद के दोनों सदनों के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मत का मूल्य होगा। इस प्रकार संसद के समस्त निर्वाचित सदस्यों के मतों के मूल्यों का जोड़ किया जाएगा। जो संख्या इस प्रकार उपलब्ध होगी वह संसद के दोनों सदनों के मतदाताओं के मूल्यों का प्रतिनिधित्व करेगी।

राष्ट्रपति के निर्वाचन का निर्णय उपर्युक्त दोनों प्रकार के मत मूल्यों (अर्थात् समस्त राज्य सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के मत-मूल्यों तथा संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों के मत मूल्यों) के योग के आधार पर होगा। यहाँ पर प्रश्न यह उठता है कि राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए ऐसी पेचीदा प्रणाली क्यों अपनाई गई? इसका एक कारण तो यह था कि विभिन्न राज्यों के निर्वाचित सदस्यों के प्रतिनिधित्व में समरूपता रहे। यद्यपि प्रत्येक राज्य की विधान सभा के सदस्यों की संख्या उस राज्य की जनसंख्या के अनुपात में रहती है तथापि संविधान, विधान सभाओं के सदस्यों की एक अधिकतम तथा एक न्यूनतम संख्या भी निर्धारित करता है जिसके कारण विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व के अनुपात में असंतुलन हो सकता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप यह असंतुलन समाप्त हो जाता है। इस पेचीदा प्रक्रिया को अपनाने का एक दूसरा कारण यह भी था कि संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों तथा राज्यों की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों के मत-मूल्यों में लगभग समानता बनी रहे।

### योग्यता

कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक हो, कम से कम 35 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका हो, लोकसभा के लिए निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो तथा भारत सरकार या राज्य सरकार या किसी स्थानीय स्वशासी संस्था के अंतर्गत लाभ के पद को धारण न करता हो, राष्ट्रपति पद के निर्वाचन में प्रत्याशी हो सकता है। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, किसी राज्य का राज्यपाल अथवा केंद्रीय या राज्य सरकार के किसी मंत्री को इस प्रयोजन के लिए राज्य के आधीन लाभ पद का धारक नहीं माना जाएगा।

### शपथ

पद-धारण करने से पूर्व राष्ट्रपति को एक निर्धारित प्रपत्र पर भारत के मुख्य न्यायाधीश अथवा उसकी अनुपस्थिति में उच्चतम न्यायालय के वरिष्ठतम न्यायाधीश के सम्मुख शपथ लेनी पड़ती है।

### पद-मुक्ति की प्रक्रिया

पद ग्रहण करने के दिन से पाँच वर्षों तक वह अपने पद पर बना रहता है। इससे पूर्व भी वह कभी भी अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है। संविधान के

उल्लंघन के आधार पर महाभियोग की कार्यवाही के माध्यम से उसे कभी भी अपदस्थ किया जा सकता है। इसके लिए संसद के किसी भी सदन में उस पर आरोप लगाया जा सकता है। ऐसा आरोप सदन के एक प्रस्ताव के रूप में आना चाहिए। ऐसा प्रस्ताव तभी लाया जा सकता है जब 14 दिनों में पूर्व इसकी सूचना दी जाए तथा सदन के कम से कम एक चौथाई सदस्य उस पर अपने हस्ताक्षर करें। अगर यह प्रस्ताव कम से कम उस सदन के कुल सदस्यों की दो तिहाई संख्या से पारित हो जाता है तब ऐसा प्रस्ताव दूसरे सदन के पास भेजा जाता है जो उस आरोप की जाँच पड़ताल करता अथवा करवाता है। ऐसी किसी जाँच के समय राष्ट्रपति को अपना पक्ष स्वयं रखने अथवा अपने प्रतिनिधि द्वारा रखने का अवसर मिलना चाहिए। जाँच पड़ताल के उपरांत वह सदन भी (जिसने आरोप की जाँच-पड़ताल की) अपने कुल सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत से यह प्रस्ताव पारित कर दे कि राष्ट्रपति के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो चुका तो जिस दिन ऐसा प्रस्ताव पारित होता है उस दिन से राष्ट्रपति अपदस्थ हो जाता है।

### कार्यपालिका शक्तियाँ

संघ सरकार की कार्यपालिका संबंधी समस्त शक्तियों का उपयोग राष्ट्रपति के नाम से किया जाता है। वही प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है। संविधान की व्यवस्था के अनुसार वह किसी ऐसे व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त करता है जिसके बारे में उसे यह अनुभव हो कि वह लोकसभा में सदस्यों के बहुमत का विश्वास प्राप्त कर लेगा। संविधान की यह सुस्थापित परंपरा है कि लोकसभा में जिस दल का अथवा (यदि किसी एक दल को बहुमत न प्राप्त हो तो) दल समूह का बहुमत हो, राष्ट्रपति उसे मंत्रिमंडल गठित करने के लिए आमंत्रित करता है। वह प्रधानमंत्री के परामर्श से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता तथा उनमें मंत्रालयों का वितरण करता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति भारत के महा न्यायवादी, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों, राज्यों के राज्यपालों, संघीय क्षेत्रों के मुख्य आयुक्तों, वित्त आयोग के सदस्यों, भाषा आयोग, निर्वाचन आयोग, भारत के राजदूतों तथा अन्य राजनयिकों की नियुक्ति करता है। वह अंतर्राज्य परिषद्, अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में रिपोर्ट देने वाले आयोग, अनुसूचित जातियों और जन जातियों के आयुक्त, पिछड़ा वर्ग आयोग तथा अल्प संख्यक आयोग की भी नियुक्ति करता है।

राष्ट्रपति को संघ सरकार की गतिविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है। यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह किसी ऐसे विषय को मंत्रिपरिषद् के सम्मुख रखवा सकता है जिसके बारे में किसी मंत्री ने निर्णय लिया हो किंतु जो मंत्रिपरिषद् के सम्मुख विचारार्थ नहीं रखा गया हो।

### विधायी शक्तियाँ

चूँकि राष्ट्रपति संसद का एक अभिन्न अंग है, अतः उसे कुछ विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं। वह संसद के दोनों सदनों के सत्रों का आह्वान करता, उसे सत्रावसान करता, लोकसभा को विघटित करता, दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करता, दोनों सदनों अथवा एक सदन को संदेश भेजता, दोनों सदनों द्वारा पारित विधेयक पर अपनी सहमति देता, किसी गैर धन विधेयक पर दोनों सदनों में मतभेद होने की

स्थिति में दोनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाता तथा अध्यादेश जारी करता है। उसे राज्य सभा में 12 सदस्यों को मनोनीत करने तथा लोकसभा में यदि आम चुनाव के बाद वह यह अनुभव करता है कि आंग्ल भारतीय समुदाय को लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है तो लोकसभा में आंग्ल भारतीय समुदाय के दो सदस्य मनोनीत कर सकता है।

### न्यायिक शक्तियाँ

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति के अतिरिक्त राष्ट्रपति को किसी अपराध के लिए सिद्ध दोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन (reprieve), विराम (respite) या परिहार (remission) करने की अथवा दंडादेश के निलंबन (suspend), या लघुकरण (commute) की शक्ति उन सभी मामलों में प्राप्त होगी जिनमें 1. दंड या दंडादेश, सैनिक न्यायालय ने दिया है, 2. दंड या दंडादेश ऐसे विषय के विरुद्ध अपराध के लिए दिया गया है जिस विषय तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, 3. दंडादेश मृत्यु दंडादेश है।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि क्षमा, प्रविलंबन, विराम, परिहार और लघुकरण शब्दों का प्रयोग कुछ विशिष्ट अर्थों के लिए किया गया है। क्षमा-दान एक अनुकम्पा का कार्य है। कोई अधिकार पूर्वक इसकी माँग नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति को क्षमा कर दिया जाता है उसकी स्थिति ऐसी हो जाती है जैसे कि उसने कभी उस अपराध को किया ही न हो। क्षमा दान विशुद्ध रूप से एक कार्यपालिका का कार्य है, प्रविलंबन से अभिप्राय विधि द्वारा निर्धारित दंड को अस्थायी रूप से टालना है, विराम से अभिप्राय दंड के क्रियान्वयन को भविष्य के लिए विलंबित करना है, परिहार से अभिप्राय दंड के स्वरूप में परिवर्तन किए बिना उसकी मात्रा में परिवर्तन करना है जैसे आजीवन कारावास को 10 वर्ष के कारावास में परिवर्तित करना, लघुकरण से अभिप्राय दंड के स्वरूप में परिवर्तन कर उसे घटाना है, जैसे मृत्युदंड को आजीवन कारावास के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए।

### वित्तीय शक्तियाँ

प्रत्येक वित्तीय वर्ष में राष्ट्रपति की ओर से वित्तमंत्री संसद के दोनों सदनों के सम्मुख वार्षिक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करता है। राष्ट्रपति की संस्तुति के बिना कोई धन विधेयक लोकसभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। ऐसा कोई विधेयक जो भारत की संचित निधि से खर्च करने की व्यवस्था करता हो संसद के दोनों सदनों में से किसी सदन के द्वारा उस समय तक पारित नहीं किया जा सकता जब तक राष्ट्रपति ने ऐसा करने की संस्तुति न की हो। राष्ट्रपति की संस्तुति के बिना किसी अनुदान की माँग सदन में नहीं रखी जा सकती।

### सेना संबंधी शक्तियाँ

सैन्य बलों की सर्वोच्च शक्ति राष्ट्रपति में सन्निहित है, किंतु इसका प्रयोग विधि द्वारा नियमित होता है। संसद जल, थल तथा नभ, तीनों सैन्य बलों तथा संघ राज्य के अन्य सशस्त्र बलों के संबंध में कोई भी विधि बना सकती है। संसद युद्ध और शांति के संबंध में विधि बना सकती है। राष्ट्रपति संसद की सहमति के बिना अथवा संसद की सहमति की संभावना के आधार पर न तो किसी देश के विरुद्ध युद्ध की

घोषणा कर सकता है और न ही कहीं सैन्य बलों को तैनात कर सकता है।

### वैदेशिक संबंधों से संबंधित शक्तियाँ

देश का समूचा राजनयिक कार्य राष्ट्रपति के नाम से संचालित किया जाता है। वह विदेशों में भारत का प्रतिनिधित्व करने वाले राजदूतों तथा अन्य राजनयिक प्रतिनिधियों को नियुक्त करता है। विदेशों के जो राजनयिक प्रतिनिधि भारत में भेजे जाते हैं वे अपना परिचयपत्र राष्ट्रपति के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। समस्त अंतर्राष्ट्रीय संधियों और समझौते राष्ट्रपति के नाम पर किए जाते हैं किंतु बाद में संसद द्वारा उनकी पुष्टि आवश्यक है।

### आपातकालीन शक्तियाँ

भारतीय संविधान तीन प्रकार की स्थितियों में राष्ट्रपति को आपातकाल की घोषणा करने का अधिकार देता है :

*1. युद्ध, आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह से संबद्ध आपात :* जब कभी राष्ट्रपति को यह विश्वास हो जाए कि युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह के कारण भारत अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा खतरे में है या खतरे की तत्काल संभावना है तो वह संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत आपातकाल की उद्घोषणा कर सकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए कि ऐसी घोषणा समुचित विचार के उपरांत की गई है, संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि संघीय मंत्रिपरिषद्, राष्ट्रपति को ऐसी घोषणा की संस्तुति लिखित रूप में करेगा। ऐसी प्रत्येक घोषणा को संसद के प्रत्येक सदन में 30 दिन के भीतर रखना और उसकी स्वीकृति आवश्यक है। यदि ऐसी घोषणा उस समय की जाती है जब लोकसभा विघटित हो और राज्य सभा इसे 30 दिन के भीतर अपनी स्वीकृति दे देती है तब 30 दिन के भीतर ऐसी घोषणा की स्वीकृति आवश्यक है। जिस दिन लोकसभा उक्त घोषणा पर अपनी स्वीकृति देती है उस दिन से अगले 6 महीनों तक वह लागू रहेगी। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संसद के प्रत्येक सदन की स्वीकृति से संबद्ध प्रस्ताव का उस दिन की कुल संख्या के पूर्ण बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित होना आवश्यक है। छह महीनों की अवधि समाप्त होने के उपरांत भी यदि ऐसे आपातकाल को आगे जारी रखना हो तो संसद के दोनों सदनों द्वारा इस संबंध में प्रस्ताव पारित करना आवश्यक है। जब-जब संसद के दोनों सदन इस प्रकार के प्रस्ताव पारित करेंगे तब तब आपातकाल की अवधि 6-6 महीने तक बढ़ती रहेगी।

*आपातकाल की उद्घोषणा के प्रभाव*

जब कभी संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत आपातकाल की उद्घोषणा होती है तो इसके ये प्रभाव होते हैं : 1. राज्य की कार्यपालिका शक्ति संघीय कार्यपालिका के अधीन हो जाती है, 2. संसद की विधायी शक्ति राज्य सूची से संबद्ध विषयों तक विस्तृत हो जाती है। 3. संविधान के अनुच्छेद 19 में दी गई स्वतंत्रताएँ स्थगित हो जाती हैं। 4. राष्ट्रपति को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि संविधान के अनुच्छेद 20-21 में उल्लिखित अधिकारों को छोड़, शेष मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए न्यायपालिका की शरण लेने के अधिकार को स्थगित कर दे।

*2. संवैधानिक तंत्र की विफलता :* किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रतिवेदन प्राप्त होने पर अथवा अन्यथा भी यदि राज्यपाल ऐसा कोई प्रतिवेदन न दे तब भी

राष्ट्रपति को इस बात का विश्वास हो जाए कि उस राज्य में संविधान की व्यवस्था के अनुसार शासन संचालन संभव नहीं, तब राष्ट्रपति अनुच्छेद 356 के अंतर्गत एक उद्घोषणा के द्वारा उस राज्य की समस्त अथवा कुछ कार्यपालिकाशक्तियाँ अपने हाथ में ले सकता है। वह यह भी घोषणा कर सकता है कि राज्य की विधायीशक्ति का प्रयोग संसद द्वारा या संसद की सत्ता के अंतर्गत किया जाएगा। वह उच्च न्यायालय को छोड़, संविधान के किसी भी अन्य प्रावधान को स्थगित कर सकता है। ऐसी किसी भी घोषणा को दो महीनों के भीतर संसद के दोनों सदनों के सम्मुख रखना और उनकी स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। यदि ऐसी घोषणा उस समय की जाती है जब लोकसभा विघटित हो तो राज्य सभा की सहमति प्राप्त हो जाने पर वह दो महीनों से आगे भी लागू रहेगी। किंतु नवनिर्वाचित लोकसभा द्वारा उसकी प्रथम बैठक के आरंभ से 30 दिन के भीतर ऐसी घोषणा की स्वीकृति आवश्यक है। जिस दिन लोकसभा उक्त घोषणा पर अपनी स्वीकृति देती है उस दिन से अगले 6 महीनों तक वह लागू रहेगी। संसद के दोनों सदन प्रस्ताव पास कर इस अवधि को 6 महीने और आगे बढ़ा सकते हैं। ऐसा वे बार-बार कर सकते हैं किंतु किसी स्थिति में अर्थात जब संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत घोषित आपातकाल प्रभावी है तथा निर्वाचन आयोग यह प्रमाणित कर दे कि उस राज्य में निर्वाचन करने में कठिनाइयाँ होने का कारण ऐसी (संवैधानिक तंत्र की विफलता के कारण) घोषणा का जारी रहना आवश्यक है तो यह अवधि एक वर्ष से आगे भी बढ़ाई जा सकती है।

*3. वित्तीय आपात :* जब राष्ट्रपति को इस बात का विश्वास हो जाए कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जब भारत अथवा उसके किसी एक भाग में वित्तीय स्थिरता अथवा उसकी वित्तीय शाख खतरे में पड़ गई है तो वह संविधान के अनुच्छेद 360 के अंतर्गत वित्तीय आपात की घोषणा कर सकता है। ऐसी किसी भी घोषणा को दो महीनों के भीतर संसद के दोनों सदनों के सम्मुख रखना तथा उनकी स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। यदि ऐसी घोषणा उस समय की जाती है जब लोकसभा विघटित हो तो दो महीनों के भीतर राज्य सभा की स्वीकृति मिलने के उपरांत वह आगे भी लागू रहेगी। किंतु नवनिर्वाचित लोकसभा द्वारा, उसकी प्रथम बैठक के आरंभ से 30 दिन के भीतर ऐसी घोषणा की स्वीकृति आवश्यक है।

*वित्तीय आपात की उद्घोषणा के प्रभाव :* जब संविधान के अनुच्छेद 360 के अंतर्गत घोषित उद्घोषणा लागू रहती है तो संघीय कार्यपालिका को यह अधिकार मिल जाता है कि वह राज्य सरकार को यह निर्देश दे कि वह अपनी वित्तीय व्यवस्था का संचालन कैसे करे। ऐसे निर्देश में यह भी व्यवस्था हो सकती है कि विधान मंडल द्वारा पारित धन विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखा जाए। राष्ट्रपति संघ राज्य की सेवा में कार्यरत कर्मचारियों के किसी वर्ग अथवा समस्त कर्मचारियों के जिनमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश भी सम्मिलित हैं, वेतन, भत्ते आदि में कटौती का निर्देश भी दे सकता है।

## राष्ट्रपति की स्थिति

राष्ट्रपति की उपर्युक्त शक्तियों का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक अत्यंत शक्तिशाली पद है किंतु वास्तविक स्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। चूँकि हमने इस देश में संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया जिसमें मंत्रिपरिषद् संसद के प्रति उत्तरदायी है अतः वास्तविक शक्तियाँ मंत्रिपरिषद् को प्राप्त हैं न

कि राष्ट्रपति को। किंतु इसके बावजूद राष्ट्रपति की शक्तियों को लेकर एक विवाद खड़ा हुआ। सर्वप्रथम यह विवाद 18 दिसंबर 1951 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने उठाया जो न केवल भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे वरन संविधान सभा के अध्यक्ष भी थे। उन्होंने प्रधान मंत्री को एक टिप्पणी भेजी जिसमें कहा गया कि वह विधेयकों पर अपनी सहमति देने, संसद को संदेश भेजने तथा विधेयकों को पुनर्विचार के लिए संसद को लौटाने जैसे विषयों में मंत्रिपरिषद् की सलाह से नहीं वरन स्वविवेक से अपना निर्णय लेना चाहते हैं। भारतीय विधि संस्थान का शिलाधार रखते समय उन्होंने पुनः अपनी बात दोहराई। उन्होंने कहा कि संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की स्थिति का गहन अध्ययन करने की आवश्यकता है। राष्ट्रपति को ब्रिटिश राजा के समान समझना संविधान की गलत व्याख्या है। संविधान में स्पष्ट शब्दों में यह कहीं नहीं कहा गया है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य है....ग्रेट ब्रिटेन का संविधान अलिखित है जबकि भारतीय संविधान लिखित है... ...जहाँ एक ओर इंग्लैंड में राज्याध्यक्ष आनुवंशिकता के आधार पर पद पाता है वहाँ दूसरी ओर भारत का राज्याध्यक्ष निर्वाचित होता है तथा वह पुनर्निर्वाचन की योग्यता रखता है। अतः वह अपने आधिकारिक कार्यों के लिए अपने निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि वह पुनः निर्वाचित होना चाहता है तो उसे अपने कार्यों का औचित्य सिद्ध करना पड़ सकता है इसके लिए आवश्यक है कि उसे उन कार्यों को करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए जिन्हें वह उचित समझे।

ऐसे विवाद बाद में भी उठते रहे। परिणामस्वरूप 1976 में संसद में 42वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इस संशोधन में स्पष्टतया कहा गया है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करेगा। इस अधिनियम के बावजूद राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति के संबंध में विवाद समाप्त नहीं हुआ। इस संशोधन के द्वारा वास्तविक व्यवहार को एक वैधानिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया। वास्तविक प्रश्न यह है कि असाधारण स्थितियों में राष्ट्रपति की क्या स्थिति होगी? हम यहाँ आपातकाल की बात नहीं कर रहे हैं। यद्यपि संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो सकता है। हम यहाँ पर असाधारण स्थितियों की चर्चा कर रहे हैं। उदाहरणार्थ यदि लोकसभा में किसी एक दल या दल समूह को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है तथा प्रधानमंत्री पद के लिए दो दावेदार हों तो राष्ट्रपति प्रधानमंत्री पद के लिए किसको आमंत्रित करेगा? क्या वह अपने अंतःकरण की आवाज सुनेगा अथवा निवर्तमानमंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करेगा? इसी प्रकार यदि सत्तारूढ़ पक्ष लोकसभा में अल्पमत में आ जाता है तथा प्रधानमंत्री लोकसभा को विघटित करने का परामर्श देता है तो क्या राष्ट्रपति ऐसे परामर्श को मानने के लिए बाध्य है?

यदि सत्तारूढ़ पक्ष को संसद के दोनों सदनों में साधारण बहुमत ही प्राप्त है तो वह दृढ़ निर्णय नहीं ले सकता। यदि आधे से अधिक राज्यों के विधान मंडलों का समर्थन सत्तारूढ़ पक्ष को प्राप्त नहीं है तो राष्ट्रपति ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न कर सकता है जो मंत्रिपरिषद् के अनुकूल न हों।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राष्ट्रपति को साधारणतया (जिनमें आपातकाल की अवधि भी सम्मिलित है) एक संवैधानिक प्रमुख की भाँति कार्य करना पड़ता है किंतु विशेष स्थितियों में उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने के अवसर-प्राप्त हो सकते हैं।

## उपराष्ट्रपति

भारतीय संविधान में एक उपराष्ट्रपति की व्यवस्था है। संविधान उपराष्ट्रपति द्वारा किए जाने वाले कार्यों को दो वर्गों में विभक्त करता है। जब कभी राष्ट्रपति के निधन, त्यागपत्र अथवा अपदस्थता के कारण उसका पद रिक्त हो जाता है तो उपराष्ट्रपति, कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है। जब कभी अनुपस्थिति, अस्वस्थता अथवा किसी अन्य कारण से राष्ट्रपति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने में असमर्थ हो तो उपराष्ट्रपति स्थानापन्न राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है।

उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में करते हैं। निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा किया जाता है। निर्वाचन से संबंधित सभी आशंकाओं तथा विवादों का निपटारा उच्चतम न्यायालय द्वारा किया जाता है।

कोई व्यक्ति जो, भारत का नागरिक हो 35 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका हो, राज्य सभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो तथा जो भारत सरकार, राज्य सरकार या स्थानीय शासन के आधीन किसी लाभ के पद को धारण न करता हो, उपराष्ट्रपति पद पर निर्वाचित हो सकता है।

पद को ग्रहण करने से पूर्व उपराष्ट्रपति को राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के सम्मुख पद की शपथ दिलाई जाती है। उपराष्ट्रपति पद-ग्रहण की तारीख से पाँच वर्ष तक अपने पद पर आरूढ़ रहता है। राष्ट्रपति को संबोधित कर वह अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है। राज्यसभा के सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव तथा उसकी लोकसभा द्वारा पुष्टि हो जाने पर वह अपने पद से अपदस्थ हो जाता है। किंतु ऐसे किसी प्रस्ताव को लाने के लिए 14 दिनों की पूर्व सूचना आवश्यक है। एक रोचक तथा अनुपम घटना उस समय घटित हुई जब वी.वी. गिरि भारत के उपराष्ट्रपति थे तथा राष्ट्रपति जाकिर हुसैन के निधन के कारण रिक्त स्थान पर कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे। जब राष्ट्रपति के निर्वाचन की अधिसूचना घोषित हुई तो वी.वी. गिरि ने चुनाव लड़ने का निश्चय किया। किंतु नामांकन से पूर्व वे अपने पद से त्यागपत्र देना चाहते थे। अब प्रश्न यह उठा कि उन्हें किस पद से त्यागपत्र देना चाहिए? क्या उनको अपने मूल पद अर्थात उपराष्ट्रपति पद से त्यागपत्र देना चाहिए अथवा कार्यकारी राष्ट्रपति के पद से। जिस पद को वे उस समय धारण किए हुए थे? जब उन्होंने विधि विशेषज्ञों से परामर्श लिया तो उन्होंने सलाह दी कि उन्हें अपने मूल पद अर्थात उपराष्ट्रपति पद से त्यागपत्र देना चाहिए। संविधान की व्यवस्था के अनुसार यह त्यागपत्र राष्ट्रपति को संबोधित किया जाना चाहिए। किंतु उस समय वे स्वयं कार्यकारी राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे थे। अब प्रश्न यह उठा कि ऐसी स्थिति में क्या किया जाए? उन्होंने अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को संबोधित किया तथा उसे राष्ट्रपति की टेबल पर रखा और चल दिए।

उपराष्ट्रपति को संसद द्वारा राज्य सभा के सभापति के रूप में कार्य करने के लिए निर्धारित वेतन, भत्ते आदि प्राप्त होते हैं। जब कभी वह कार्यकारी अथवा स्थानापन्न राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है तो उस समय वह राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य नहीं कर सकता और उस समय उसे वे सब शक्तियाँ, भत्ते तथा विशेषाधिकार उपलब्ध होते हैं जो राष्ट्रपति को प्राप्त हैं।

उपराष्ट्रपति पदेन राज्यसभा का सभापति होता है। वह राज्यसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता तथा उसकी समस्त कार्यवाही का संचालन करता है। किंतु जब कभी उसे अपदस्थ करने से संबंधित प्रस्ताव विचाराधीन हो तो वह उक्त कार्यों से विरत रहता है। वह उच्च सदन में आचरण के नियमों का पालन करवाता है। जब कभी किसी प्रश्न पर सदन में मत विभाजन होता है तो वह मतों की गिनती करता तथा परिणाम की घोषणा करता है। किसी भी प्रस्ताव अथवा प्रश्न पर यदि कोई विवाद उठ जाए कि उसे विचारार्थ स्वीकार किया जाए अथवा नहीं तो इसका निपटारा वह अपने निर्णय से करता है। साधारणतया वह सदन के किसी प्रस्ताव या विधेयक पर मतदान नहीं करता किंतु जब सदन में मतदान दोनों पक्षों में एक समान बँट जाए तो वह निर्णायक मत देता है। जब कभी कोई सदस्य कार्य स्थगन प्रस्ताव रखता है तो वह निर्णय देता है कि उसे विचारार्थ स्वीकार किया जाए अथवा नहीं। कभी-कभी कुछ केंद्रीय विश्वविद्यालयों का वह चांसलर भी होता है।

## केंद्रीय मंत्रिपरिषद्

संविधान एक मंत्रिपरिषद् की व्यवस्था करता है जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति की सहायता करती एवं उसको परामर्श देती है। राष्ट्रपति को उस परामर्श के अनुसार कार्य करना होता है।

राष्ट्रपति पहले प्रधानमंत्री को नियुक्त करता है तथा तत्पश्चात् उसके परामर्श से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करता है जिसके बारे में उसकी यह धारणा हो कि वह लोकसभा के सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त कर सकेगा। यदि लोकसभा में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त है तथा वह अपना नेता निर्वाचित कर लेता है तो राष्ट्रपति को उस नेता को ही प्रधानमंत्री नियुक्त करना पड़ता है। यदि लोकसभा में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है तथा दो या दो से अधिक दल मिलकर समान कार्यक्रम के आधार पर एक संयुक्त विधायक दल बना लेते हैं तथा अपना एक नेता भी चुन लेते हैं तो राष्ट्रपति उस नेता को प्रधानमंत्री पद के लिए आमंत्रित करता है।

तत्पश्चात् राष्ट्रपति प्रधानमंत्री से उन व्यक्तियों के नामों की सूची माँगता है जिन्हें वह मंत्री पद पर नियुक्त करना चाहता है। राष्ट्रपति को ऐसे व्यक्तियों को जिनकी संस्तुति प्रधानमंत्री ने की है, मंत्री पद पर नियुक्त करना पड़ता है।

मंत्री तीन प्रकार के होते हैं : 1. केबिनेट मंत्री 2. राज्य मंत्री तथा 3. उप मंत्री। केबिनेट मंत्रियों की एक छोटी समिति होती है जिसमें वे मंत्री नियुक्त किए जाते हैं जिनका दल में महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा जो महत्त्वपूर्ण विभागों के मंत्री होते हैं। इसकी बैठकें प्रायः होती रहती हैं तथा शासन के महत्त्वपूर्ण निर्णय इसी के द्वारा लिए जाते हैं। कैबिनेट मंत्री एक अथवा अधिक विभागों का अध्यक्ष होता है। राज्य मंत्री दो प्रकार के होते हैं। कुछ राज्य मंत्रियों को अपने मंत्रालय का स्वतंत्र कार्यभार दिया जाता है तथा कुछ राज्य मंत्री किसी केबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करते हैं। जब कभी उनके मंत्रालय से संबद्ध किसी विषय पर केबिनेट में मंत्रणा होती है तो संबद्ध राज्य मंत्री को केबिनेट की उक्त बैठक में बुलाया जा सकता है। उपमंत्री या तो किसी केबिनेट मंत्री अथवा किसी राज्य मंत्री की देखरेख में कार्य करते हैं। उनका प्रमुख कार्य

केबिनेट मंत्री अथवा राज्य मंत्री को, जैसी भी स्थिति हो, उनके कार्यों को निष्पादित करने में सहायता देनी होती है।

### प्रधानमंत्री की स्थिति

मंत्रिपरिषद् में प्रधानमंत्री को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वही अन्य मंत्रियों का चयन करता है। जब कभी प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्री में किसी विषय पर मतभेद उत्पन्न हो जाए तो उस मंत्री को प्रधानमंत्री की बात माननी पड़ती है। प्रधानमंत्री किसी भी मंत्री से त्यागपत्र माँग सकता है। यदि वह त्यागपत्र नहीं देता है तो प्रधानमंत्री के परामर्श पर राष्ट्रपति उसे मंत्रिपरिषद् से हटा सकता है।

प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषदों की बैठकों की अध्यक्षता करता है। मंत्रिपरिषद् के निर्णयों को वही राष्ट्रपति तक पहुँचाता है। जब कभी राष्ट्रपति कोई बात मंत्रिपरिषद् तक पहुँचाना चाहता है तो वह प्रधानमंत्री द्वारा ही यह कार्य करता है। प्रधानमंत्री शासन का प्रमुख प्रवक्ता होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अन्य मंत्रियों की तुलना में प्रधानमंत्री अत्यधिक शक्तिशाली है। किंतु प्रधानमंत्री सर्वशक्तिमान नहीं है। अपनी मंत्रिपरिषद् का निर्माण करते समय उसे कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। जैसे समाज के विभिन्न वर्गों, विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों तथा दल के विभिन्न विचार समूहों का प्रतिनिधित्व।

इन सब बातों के परिणाम स्वरूप मंत्रियों के चयन में प्रधानमंत्री की पसंद अत्यंत सीमित हो जाती है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मंत्रिपरिषद् में लगभग आधे सदस्य ऐसे होते हैं जिन्हें प्रधानमंत्री चाहता है तथा लगभग आधे ऐसे होते हैं जिन्हें प्रधानमंत्री को लेना पड़ता है क्योंकि उसके पास कोई और विकल्प नहीं होता। यही कारण है कि प्रधानमंत्री को समकक्षों में प्रथम कहा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सभी मंत्री बराबर हैं किंतु प्रधानमंत्री को उनमें प्रथम स्थान प्राप्त है।

समूची मंत्रिपरिषद् की बैठक यदाकदा ही होती है। केबिनेट की बैठकें प्रायः होती रहती हैं। सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय केबिनेट की बैठकों में लिए जाते हैं। परंतु उन सब निर्णयों का उत्तरदायित्व मंत्रिपरिषद् ले लेती है। ऐसा हो सकता है कि कोई एक मंत्री केबिनेट के निर्णय से सहमत न हो। किंतु वह इसे सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं कर सकता जब तक कि वह मंत्रिपरिषद् से त्यागपत्र नहीं दे दे। मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि किसी एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त किया जाए तो वह समूची मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास माना जाएगा। ऐसी स्थिति में प्रधानमंत्री सहित सभी मंत्रियों को अपदस्थ होना पड़ता है। संसद के दोनों सदनों के सदस्य मंत्रिपरिषद् पर प्रश्न पूछ कर, पूरक प्रश्न पूछ कर, कार्य स्थगन प्रस्ताव ला कर, ध्यान आकर्षण की सूचना देकर तथा विभिन्न संसदीय समितियों, जैसे लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, शासकीय आश्वासन समिति, लोक उद्यम समिति, विशेषाधिकार समिति, प्रदत्त विधान समिति इत्यादि के द्वारा नियंत्रण रखते हैं।

प्रशासन से संबंधित सभी नीतिगत निर्णय मंत्रिपरिषद् लेती है। यह सभी नीतिगत निर्णयों के कार्यान्वयन की देख-रेख भी करती है। यह विधेयकों को तैयार करती तथा संसद के दोनों सदनों में उन्हें पारित करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है ताकि वे अधिनियम बन

सकें। यह बजट तैयार करती तथा संघीय शासन की आय और व्यय का नियमन करती है। यह विदेश नीति का निर्माण करती तथा अन्य देशों से संबंध संचालन करती है।

## भारत का उच्चतम न्यायालय

उच्चतम न्यायालय भारत की सर्वोच्च न्यायिक संस्था है। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और कई अन्य न्यायाधीश होते हैं। अन्य न्यायाधीशों की संख्या संसद विधि द्वारा निर्धारित करती है। प्रारंभ में संविधान में केवल सात अन्य न्यायाधीशों की व्यवस्था थी। संसद द्वारा इसकी संख्या में समय-समय पर वृद्धि की जाती रही है। इस समय अन्य न्यायाधीशों की संख्या 25 है।

उच्चतम न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के उन न्यायाधीशों जिन्हें वह उचित समझता है, से परामर्श करके करता है। किंतु राष्ट्रपति के लिए अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लेना आवश्यक होता है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के पद पर वही व्यक्ति नियुक्त किया जा सकता है जो भारत का नागरिक हो तथा जो किसी उच्च न्यायालय में 5 वर्षों तक न्यायाधीश पद पर रहा हो अथवा जो किसी उच्च न्यायालय में 10 वर्षों से वकालत करता रहा हो अथवा राष्ट्रपति की दृष्टि में प्रसिद्ध न्याय-विद हो।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को उतना ही वेतन मिलता है जितना संसद विधि द्वारा समय-समय पर निर्धारित करती है। उन्हें वे समस्त विशेषाधिकार, भत्ते, छुट्टियाँ, पेंशन आदि मिलती हैं, जिन्हें संसद विधि द्वारा निर्धारित करती है। एक बार नियुक्त हो जाने के बाद उनकी कार्यावधि में उनके विशेषाधिकार, भत्ते, छुट्टियों, पेंशन आदि में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो उनके लिए हानिप्रद हो। इसमें केवल एक अपवाद हो सकता है— जब देश में वित्तीय आपात विद्यमान हो।

मुख्य न्यायाधीश सहित प्रत्येक न्यायाधीश 65 वर्ष की आयुपर्यंत अपने पद पर बना रहता है। वह कभी भी राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र दे सकता है। उसे उसके पद से तभी हटाया जा सकता है जब उसके विरुद्ध सिद्ध कदाचार अथवा असमर्थता के आधार पर उसे हटाए जाने के लिए संसद के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल संख्या के बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो तिहाई बहुमत द्वारा समर्थित आवेदन राष्ट्रपति के सम्मुख हो तथा राष्ट्रपति ने उसे हटाए जाने के पक्ष में आदेश दिया हो।

अपना पद ग्रहण करने से पूर्व प्रत्येक न्यायाधीश को राष्ट्रपति अथवा उसके द्वारा इस निमित्त नियुक्त किसी व्यक्ति के समक्ष अपने पद की शपथ लेनी पड़ती है। जब कभी भारत के मुख्य न्यायाधीश का पद रिक्त हो अथवा अनुपस्थिति या किसी अन्य कारण से वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में असमर्थ हो तो उसका कार्यभार राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित किसी अन्य न्यायाधीश को सौंपा जाएगा।

अपने कर्त्तव्यों का पालन करते समय उच्चतम न्यायालय में जब कभी गणपूर्ति का भाव हो तो मुख्य न्यायाधीश राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को (यदि उच्च न्यायालय के उस अवकाश प्राप्त न्यायाधीश में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्त होने की योग्यता हो) उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए अनुरोध

कर सकता है। ऐसे किसी न्यायाधीश को राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित भत्ते आदि प्राप्त होंगे तथा नियमित न्यायाधीशों की भाँति ही उसे समस्त क्षेत्राधिकार,शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार प्राप्त होंगे।

### प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

उच्चतम न्यायालय को ऐसे किसी विवाद की सुनवाई सीधे करने का अधिकार प्राप्त है : 1. जिसमें एक ओर भारत सरकार हो तथा दूसरी ओर एक या अनेक राज्य हों, 2. जिसमें एक ओर भारत सरकार और कोई एक अथवा अनेक राज्य तथा दूसरी ओर एक या अनेक राज्य हों, 3. जो दो या अनेक राज्यों के बीच हो ऐसे विवाद का संबंध किसी विधि अथवा तथ्य से हो जिस पर कोई वैध अधिकार निर्भर हो।केंद्रीय सरकार तथा देशी रियासतों के बीच की गई संधियाँ न्यायालय के मौलिक अधिकार से परे हैं।

### अपीलीय क्षेत्राधिकार

उच्चतम न्यायालय को उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है। ये अपीलें तीन प्रकार के मामलों : संवैधानिक, फौजदारी और दीवानी, में हो सकती हैं। उच्चतम न्यायालय संवैधानिक मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील उस समय सुन सकता है जब उच्च न्यायालय प्रमाणित कर दे कि उस मामले में कानूनी प्रश्न विचारणीय है अथवा संविधान की व्याख्या की आवश्यकता है। यदि उच्च न्यायालय ऐसा प्रमाणपत्र न दे तो भी उच्चतम न्यायालय अपने अधिकार से किसी व्यक्ति को ऐसा प्रमाण पत्र दे सकता और उसकी अपील सुन सकता है, यदि उसे ऐसा लगे कि उसमें कोई कानूनी प्रश्न विचारणीय है अथवा संविधान की व्याख्या की आवश्यकता है।

फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में उस समय अपील की जा सकती है जब किसी अपराधी को अधीनस्थ न्यायालय ने छोड़ दिया हो और अपील में उच्च न्यायालय ने उसे मृत्युदंड दिया हो। इसी प्रकार जब कभी किसी मामले को उच्च न्यायालय ने अधीनस्थ न्यायालय से हटाकर अपने पास हस्तांतरित करा लिया हो और अपराधी को मृत्युदंड दिया हो। उच्चतम न्यायालय में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उस समय भी अपील हो सकती है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि यह मामला उच्चतम न्यायालय के सुनने के योग्य है।

दीवानी मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में उस समय अपील हो सकती है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि उस मामले का संबंध सार्वजनिक महत्त्व के किसी सारगर्भित कानूनी प्रश्न से है। उच्चतम न्यायालय में दीवानी मामलों में उस समय भी अपील हो सकती है जब उच्च न्यायालय यह प्रमाणित कर दे कि उस मामले का निर्णय उच्चतम न्यायालय में होना आवश्यक है।

### परामर्शदात्री क्षेत्राधिकार

जब कभी राष्ट्रपति को ऐसा लगे कि विधि या तथ्य से संबंधित कोई ऐसा प्रश्न उठा है या उठने की संभावना है जो सार्वजनिक महत्त्व का है अथवा जिसकी प्रकृति ऐसी है कि उस पर उच्चतम न्यायालय का परामर्श लेना उचित होगा। राष्ट्रपति उस प्रश्न को उच्चतम न्यायालय के सम्मुख परामर्श के लिए भेज सकता है और उच्चतम न्यायालय उस की सुनवाई कर उस पर अपना परामर्श राष्ट्रपति को भेज सकता है। ऐसे

परामर्श को मानने के लिए न तो राष्ट्रपति बाध्य है और न उससे प्रभावित पक्ष ही।

### पुनर्विलोकन का अधिकार

उच्चतम न्यायालय को अपने निर्णयों का पुनर्विलोकन करने का अधिकार है।

### उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को लागू करना

उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को भारत के सभी न्यायालयों को मानना पड़ता है। सभी, दीवानी तथा न्यायिक अधिकारियों के लिए आवश्यक है कि वे उच्चतम न्यायालय के आदेशों को कार्यान्वित करने में उसकी सहायता करें।

### संविधान का संरक्षक

उच्चतम न्यायालय का प्रमुख कार्य है कि वह संविधान तथा नागरिकों को प्रदत्त मौलिक अधिकारों का संरक्षण करे। उच्चतम न्यायालय को उच्च न्यायालयों के साथ-साथ मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक आदेश, निदेश अथवा लेख-विशेषकर बंदीप्रत्यक्षी करण, परमादेश, निषेध, उत्प्रेक्षण तथा अधिकार पृच्छा-जारी करने का अधिकार प्राप्त है।

### अभिलेख न्यायालय

उच्चतम न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय के रूप में भी कार्य करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इसके निर्णय अधिकारिक तौर पर प्रकाशित किए जाते हैं तथा उन्हें दृष्टांत स्वरूप मान कर उनके आधार पर निर्णय दिए जाते हैं।

### न्यायालय की अवमानना

उच्चतम न्यायालय अपने विरुद्ध दुष्प्रचार करने वालों तथा न्यायाधीशों को प्रभावित करने के प्रयत्न करने वालों पर अवमानना की कार्यवाही कर सकता है।

### लोकहित से संबद्ध अभियोजन

कुछ समय पूर्व तक न्यायपालिका, जिसमें उच्चतम न्यायालय भी शामिल है की यह परंपरा रही है कि वही व्यक्ति मुकदमा दायर कर सकता है जो उससे सीधे संबद्ध हो। किंतु इधर कुछ वर्षों से एक नई परंपरा विकसित हुई है कि कोई भी व्यक्ति ऐसे किसी मामले को न्यायालय के सम्मुख रख सकता है जिससे वह सीधे संबद्ध न हो तथा जो सार्वजनिक हित से संबद्ध हो। ऐसे किसी मामले पर विचार करना या न करना न्यायपालिका का विशेषाधिकार है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उच्चतम न्यायालय भारतीय संघ राज्य की एक शक्तिशाली संस्था है। यह न केवल संघातरित राज्यों की रक्षा करता है वरन संवैधानिक प्रावधानों के क्रियान्वयन को भी सुरक्षा प्रदान करता है। यह नागरिकों के मौलिक अधिकारों का संरक्षण करता है तथा शासन के दोनों अंगों – कार्यपालिका तथा विधायिका पर भी नियंत्रण रखता है।

## अभ्यास

1. राष्ट्रपति संसद का एक आवश्यक अंग है, क्या आप इस कथन से सहमत हैं?
2. धन विधेयक और साधारण विधेयक में क्या अंतर है? धन विधेयक कैसे पारित किया जाता है?
3. भारतीय संसद की विधि-निर्माण-प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
4. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि राज्य सभा को लोकसभा की अपेक्षा कम अधिकार प्राप्त हैं?
5. भारतीय राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।
6. राष्ट्रपति को कौन सी कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त हैं?
7. राष्ट्रपति की विधायी शक्तियों का उल्लेख कीजिए।
8. राष्ट्रपति की न्यायिक शक्तियों की विवेचना कीजिए।
9. क्या भारत का राष्ट्रपति आपातकालीन शक्तियों का प्रयोग स्वेच्छा से कर सकता है?
10. भारतीय राष्ट्रपति की वास्तविक स्थिति का परीक्षण कीजिए।
11. उपराष्ट्रपति की शक्तियों का विवरण दीजिए।
12. क्या प्रधानमंत्री समकक्षों में प्रथम है? सकारण उत्तर दीजिए।
13. मंत्रिपरिषद् के सामूहिक उत्तरदायित्व से क्या अभिप्राय है?
14. उच्चतम न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार की व्याख्या कीजिए।
15. उच्चतम न्यायालय राष्ट्रपति को कब परामर्श देता है? क्या राष्ट्रपति उसके परामर्श को मानने के लिए बाध्य है?
16. उच्चतम न्यायालय भारतीय नागरिकों के मौलिक अधिकारों की किस प्रकार रक्षा करता है?
17. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए।
    क. संवैधानिक तंत्र की विफलता
    ख. वित्तीय आपात।
    ग. राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने की प्रक्रिया।
    घ. मंत्रिपरिषद्।
    च. लोक लेखा समिति।

# अध्याय 6

# राज्य सरकार

## राज्य विधान मंडल

प्रत्येक राज्य में एक विधान मंडल है। कुछ राज्यों में द्विसदनीय विधान मंडल है, जिनमें प्रथम सदन को विधान सभा और द्वितीय सदन को विधान परिषद् के नाम से संबोधित किया जाता है।

### राज्यपाल

राज्य का राज्यपाल विधान मंडल का आवश्यक अंग होता है। वह विधान मंडल का सत्राह्वान तथा सत्रावसान करता है। विधान सभा को विघटित कर सकता है। विधान मंडल द्वारा पारित कोई विधेयक उसकी सहमति के बिना अधिनियम नहीं बन सकता । विधान मंडल के पास लंबित किसी विधेयक के संबंध में वह संदेश भेज सकता है तथा विधान मंडल को उस पर विचार करना होता है। विधान सभा के चुनाव के बाद पहले सत्र में तथा प्रत्येक वर्ष के पहले सत्र में राज्यपाल विधान मंडल को संबोधित करता है, जिसमें वह अधिवेशन को बुलाने के कारणों से सदन को परिचित करवाता है। राज्यपाल के संबोधन में जिन विषयों का उल्लेख होता है उन पर विधान मंडल को विचार करना पड़ता है। जब विधान मंडल का सत्र नहीं चल रहा हो और राज्यपाल को ऐसा लगे कि तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता है तो वह अध्यादेश जारी कर सकता है, जिसे वही स्थान प्राप्त है जो विधान मंडल द्वारा पारित किसी अधिनियम को है। ऐसे अध्यादेश का 6 सप्ताह के भीतर विधान मंडल के सम्मुख रखा जाना तथा उसके द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। यदि विधान मंडल 6 सप्ताह के भीतर उसे अपनी स्वीकृति नहीं देता है तो उस अध्यादेश की वैधता समाप्त हो जाती है।

### विधान परिषद्

यदि किसी राज्य की विधान सभा अपने कुल सदस्यों के पूर्ण बहुमत तथा उपस्थित मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पारित करे तो संसद उस राज्य में विधान परिषद् स्थापित कर सकती है अथवा उसका लोप कर सकती है। इस समय केवल पाँच राज्यों (उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, जम्मू एवं कश्मीर, महाराष्ट्र तथा बिहार) में विधान परिषदें विद्यमान हैं।

विधान परिषद् राज्य विधान मंडल का उच्च सदन होता है। विधान परिषद् के कुल सदस्यों की संख्या, उस राज्य की विधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या की एक तिहाई से अधिक नहीं हो सकती है किंतु किसी भी अवस्था में विधान परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या 40 से कम नहीं हो सकती।

जब तक संसद विधि द्वारा अन्य व्यवस्था नहीं कर देती तब तक विधान परिषद् के कुल सदस्यों के एक तिहाई सदस्य, नगर पालिकाओं, जिला पंचायतों तथा राज्य की अन्य स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के एक निर्वाचक मंडल द्वारा निर्वाचित होते हैं, एक तिहाई सदस्य राज्य की विधान सभा के सदस्यों द्वारा निर्वाचित होते हैं; 1/12 सदस्य उन स्नातकों द्वारा

निर्वाचित होते हैं जिन्होंने कम से कम 3 वर्ष पूर्व स्नातक की उपाधि प्राप्त कर ली हो; 1/12 सदस्य उन अध्यापकों द्वारा निर्वाचित होते हैं जो कम से कम 3 वर्षों से माध्यमिक पाठशालाओं अथवा उनसे ऊँची कक्षाओं में शिक्षण कार्य कर रहे हों; तथा 1/6 सदस्यों का राज्यपाल उन व्यक्तियों में से मनोनीत करता है जिन्हें साहित्य, कला, विज्ञान, सहकारिता आंदोलन या सामाजिक सेवा के संबंध में विषय ज्ञान हो अथवा व्यवहारिक अनुभव हो। ये समस्त निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व की एकल संक्रमणीय मत पद्धति द्वारा किए जाते हैं।

विधान परिषद् का सदस्य बनने के लिए किसी भी व्यक्ति को निम्न लिखित योग्यता प्राप्त होनी चाहिए : वह भारत का नागरिक हो, कम से कम 30 वर्ष की आयु प्राप्त कर चुका हो तथा संसद द्वारा निर्धारित अन्य योग्यताओं से युक्त हो। उसे विकृत चित्त तथा अनुन्मोचित दिवालिया नहीं होना चाहिए और वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन किसी लाभ के पद को धारण न करता हो।

विधान परिषद् के प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष होता है किंतु प्रति दूसरे वर्ष एक तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण करते हैं तथा उनके स्थान पर नवीन सदस्य निर्वाचित होते हैं।

सदन की किसी भी बैठक के लिए कम से कम 10 या विधान परिषद् के कुल सदस्यों का दसमांश, इनमें जो भी अधिक हो, गण पूर्ति होगा।

विधान परिषद् अपने सदस्यों में से दो को क्रमशः सभापति एवं उपसभापति चुनती है। जब कभी सभापति अथवा उपसभापति सदन का सदस्य नहीं रहता तो वह अपने पद से मुक्त हो जाता है। वह अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है अथवा परिषद् के सदस्यों के बहुमत से पारित प्रस्ताव द्वारा उसे अपदस्थ भी किया जा सकता है। किंतु ऐसे किसी प्रस्ताव को लाने के लिए 14 दिनों की पूर्व सूचना आवश्यक है। सभापति एवं उपसभापति को विधान मंडल द्वारा निर्धारित वेतन एवं भत्ते प्राप्त होते हैं।

### विधान सभा

प्रत्येक राज्य की विधान सभा में कम से कम 60 और अधिक से अधिक 500 सदस्य होते हैं। ये सदस्य राज्य के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र का गठन समानता के सिद्धांत पर आधारित होता है। संविधान द्वारा विधान सभा में अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों के लिए, उनकी जनसंख्या के अनुपात में, स्थान आरक्षित रखे गए हैं। यदि विधान सभा के आम चुनाव के बाद राज्यपाल को ऐसा लगे कि विधान सभा में आंग्ल भारतीय समुदाय को समुचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है तो वह इस समुदाय के एक व्यक्ति को विधान सभा का सदस्य मनोनीत कर सकता है।

विधान सभा के सदस्य पूर्ण वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होते हैं। किसी मतदाता के लिए भारत का नागरिक होना, कम से कम 18 वर्ष की आयु का होना तथा मतदाता सूची में उसके नाम का होना आवश्यक है।

विधान सभा में निर्वाचित होने के लिए किसी व्यक्ति का भारतीय नागरिक होना, कम से कम 25 वर्ष की आयु का होना तथा उन सब योग्यताओं से युक्त होना आवश्यक है, जिन्हें संसद विधि द्वारा निर्धारित करे।

कोई व्यक्ति जो भारत सरकार, राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय स्वशासी संस्था के अंतर्गत लाभ के पद को धारण करता हो अथवा जो विकृत

मस्तिक अथवा अनुन्मोचित दिवालिया हो, विधान सभा की सदस्यता के लिए अयोग्य होता है।

विधान सभा का कार्यकाल 5 वर्ष है, किंतु राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह इससे पूर्व भी उसको विघटित कर सकता है।

: सदन की अध्यक्षता करने के लिए एक अध्यक्ष का चुनाव करने का अधिकार सदन को प्राप्त है, जो इसकी बैठकों का संचालन करता है। विधानसभा की किसी बैठक में अध्यक्ष के अनुपस्थित रहने पर सदन की बैठकों की अध्यक्षता उपाध्यक्ष करता है, जिसका निर्वाचन भी सदन करता है।

जब कभी अध्यक्ष को उसके पद से हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो, उस समय वह सदन की बैठकों की अध्यक्षता नहीं करता है। वह सदन का कार्यक्रम निर्धारित करता तथा सदस्यों के भाषणों की सीमा निर्धारित करता है। वह सदन में व्यवस्था तथा अनुशासन बनाए रखता तथा सदन में असंसदीय भाषा के प्रयोग को रोकता है। यदि कोई सदस्य उसकी बात नहीं मानता अथवा उसकी उपेक्षा करता है तो वह उसे सदन से बाहर चले जाने के लिए कह सकता, उसकी सदस्यता को कुछ काल के लिए स्थगित कर सकता अथवा सदन के मार्शल को उस सदस्य को सदन से बाहर करने का आदेश दे सकता है। जब कभी सदन में व्यवस्था बनाए रखना संभव न हो तो वह सदन की कार्यवाही को स्थगित कर सकता है। जब कभी किसी प्रश्न पर सदन में मत विभाजन हो जाए तो वह मतों की गणना के आधार पर परिणाम को घोषित करता है। साधारणतया वह सदन में मतदान नहीं करता किंतु यदि सदन के मत बराबरी में बँट जाएँ तो वह निर्णायक मत देता है। वह यह निर्णय भी करता है कि किसी कार्य-स्थगन प्रस्ताव को विचारार्थ स्वीकार किया जाए अथवा नहीं। किसी विधेयक को धन विधेयक माना जाए अथवा नहीं, इसका निर्णय भी अध्यक्ष ही करता है। सदन की बैठकों के लिए सदन के कुल सदस्यों के दसमांश सदस्यों की उपस्थिति गणपूर्ति हेतु आवश्यक है।

### अधिकार और कार्य

विधान मंडल के अधिकारों और कार्यों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है :

**विधि निर्माण :** विधान मंडल का प्रमुख कार्य विधि निर्माण है। इसे राज्य सूची से संबंधित विषयों पर विधि निर्माण का अनन्य अधिकार प्राप्त है। समवर्ती सूची से संबद्ध विषयों पर संसद की तरह राज्य विधान मंडल भी विधि निर्माण कर सकता है, किंतु यदि दोनों द्वारा निर्मित विधियों में परस्पर विरोध हो तो विरोध की सीमा तक संसदीय विधि वरणीय है।

विधान मंडल में प्रस्तुत विधेयक दो प्रकार के होते हैं : साधारण अथवा गैर धन विधेयक तथा धन विधेयक। धन विधेयकों को पारित करने की प्रक्रिया साधारण विधेयकों की प्रक्रिया से भिन्न होती है। साधारण विधेयक विधान मंडल के किसी भी सदन में पहले प्रस्तुत किए जा सकते हैं। प्रत्येक साधारण विधेयक को अधिनियम बनने से पूर्व निम्नलिखित प्रक्रिया का पालन करना पड़ता है :

प्रस्तावित विधेयक का प्रारूप सदन के सचिवालय को भेजना पड़ता है। विधान सभा का अध्यक्ष अथवा विधान परिषद् का सभापति, जैसी भी स्थिति हो, सदन की कार्य परामर्शदात्री समिति से परामर्श कर कोई एक दिन तथा समय निर्धारित करता है कि कब सदन में विधेयक प्रस्तुत किया जाना है। निर्धारित दिवस

तथा समय पर प्रस्तावक सदन की अध्यक्षता करने वाले अधिकारी से विधेयक को प्रस्तुत करने की अनुमति माँगता है। उसकी स्वीकृति मिलने के उपरांत प्रस्तावक विधेयक का शीर्षक पढ़ता तथा एक संक्षिप्त भाषण देता है जिसमें विधेयक के मूल उद्देश्यों पर प्रकाश पड़ता है। यदि कोई सदस्य उसका विरोध नहीं करता है तो यह मान लिया जाता है कि विधेयक प्रथम वाचन में पारित हो गया। साधारणतया इस स्तर पर विरोध नहीं होता क्योंकि प्रथम वाचन में विधेयक के पारित होने का केवल इतना ही अर्थ है कि सदन ने विधेयक पर विस्तार से विचार करना स्वीकार कर लिया। किंतु कभी-कभी ऐसे अवसर भी आते हैं जब विरोध पक्ष विधेयक पर विचार करने तक के लिए तैयार नहीं होता है। ऐसी स्थिति में अध्यक्षता करने वाला अधिकारी विधेयक पर पूरा बाद-विवाद करवाता तथा मतदान करवाता है। यदि सदन विधेयक को अपनी मंजूरी दे देता है तो यह माना जाता है कि सदन ने प्रथम वाचन में विधेयक को पारित कर दिया है।

कुछ अंतराल के बाद (साधारणतया दो दिनों के बाद) प्रस्तावक फिर से विधेयक को प्रस्तुत करता है। इस स्तर को द्वितीय वाचन के नाम से संबोधित किया जाता है। इसमें पहले सामान्य विचार विमर्श होता है तत्पश्चात् सदन तीन विकल्पों में से एक का चुनाव करता है : 1. या तो सदन विधेयक पर विस्तृत चर्चा करने का निर्णय लेता है ; ऐसी स्थिति में विधेयक की प्रत्येक धारा उपधारा पर विचार तथा मतदान होता है; 2.या सदन यह निर्णय लेता है कि इस पर लोक मत जानने के लिए इस विधेयक का प्रचार किया जाए, सदन जनमत की पृष्ठभूमि में विधेयक पर विस्तार से प्रत्येक धारा, उपधारा पर विचार तथा मतदान करता है, 3. सदन के पास एक विकल्प यह भी है कि वह विधेयक को एक प्रवर समिति के पास भेज दे जिसमें सदन के वे सदस्य होते हैं जो उस विषय में विशेष रुचि रखते हैं, इस समिति में 20-30 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति सभाध्यक्ष करता है, यह समिति विधेयक की गहराई से जाँच पड़ताल करती है तथा उसमें यदि कुछ हो तो, संशोधनों की संस्तुति कर अपनी रिपोर्ट पेश करती है। सदन इस रिपोर्ट की पृष्ठभूमि में विधेयक पर विस्तार से प्रत्येक धारा, उपधारा पर चर्चा कर मतदान करता है। यदि सदन विधेयक को स्वीकार कर लेता है तो यह मान लिया जाता है कि द्वितीय वाचन में विधेयक पारित हो गया।

कुछ अंतराल के बाद विधेयक अंतिम अथवा तृतीय वाचन के लिए सदन के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इस स्तर पर विधेयक पर सामान्य चर्चा होती है तथा कुछ शाब्दिक हेर-फेर के अतिरिक्त कोई संशोधन स्वीकार नहीं किया जाता। यदि सदन इस स्तर पर विधेयक को स्वीकार कर लेता है तो विधेयक दूसरे सदन के पास भेज दिया जाता है। दूसरे सदन में भी विधेयक उपर्युक्त प्रक्रिया से गुजरता है। यदि दूसरा सदन भी उसे स्वीकार कर लेता है तो उसे राज्यपाल के पास उसकी सहमति के लिए भेज दिया जाता है।

यदि दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाए तो उसका निपटारा निम्नलिखित विधि से किया जाता है : विधान परिषद्, विधान सभा द्वारा पारित विधेयक को या तो अपनी संस्तुतियों के साथ विधान सभा के पास वापस भेज देती है या तीन महीनों तक उस पर चुप्पी साध लेती है। यदि विधान सभा उस विधेयक को मूल

रूप में अथवा संशोधनों के साथ पुनः पारित कर देती है तो विधान परिषद् उसे अस्वीकार नहीं कर सकती। यदि विधान परिषद् विधेयक को अस्वीकार करती है तो भी एक महीने के बाद यह मान लिया जाता है कि विधेयक दोनों सदनों द्वारा पारित हो गया।

यदि विधेयक विधान मंडल के दोनों सदनों द्वारा (यदि उस राज्य में द्विसदनीय विधान मंडल हो तो ) अथवा विधान सभा द्वारा (यदि उस राज्य में एक सदनीय विधान मंडल हो तो ) पारित हो जाए तो उसे राज्यपाल के पास उसकी सहमति के लिए भेज दिया जाता है। राज्यपाल या तो उस विधेयक पर अपनी सहमति दे देता है या विधान मंडल के पास पुनर्विचार के लिए भेज देता है। यदि विधान मंडल पुनर्विचार के उपरांत उसे मूल रूप में अथवा संशोधित रूप में पुनः पारित कर राज्यपाल के पास भेज देता है तो राज्यपाल को उस पर अपनी सहमति देनी पड़ती है। पत्पश्चात् वह विधेयक अधिनियम बन जाता है। किंतु राज्यपाल के पास एक विकल्प और भी है। वह उस विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रख सकता है। राष्ट्रपति उस पर अपनी स्वीकृति दे सकता, उसे अस्वीकृत कर सकता अथवा अपने सुझावों के आधार पर पुनर्विचार के लिए उसे विधान मंडल के पास वापस भेज सकता है। यदि विधेयक को मूल रूप में अथवा संशोधित रूप में पुनः पारित कर देता है तो विधेयक राष्ट्रपति के पास विचारार्थ पुनः भेज दिया जाता है।

### वित्तीय विषयों से संबंधित प्रक्रिया

राज्य विधान मंडल राज्य सरकार की वित्तीय व्यवस्था को पूर्णतया नियंत्रित करता है। प्रत्येक वित्तीय वर्ष के प्रारंभ में विधान मंडल के सम्मुख वार्षिक वित्तीय विवरण अथवा बजट प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें शासन की आय और व्यय का विवरण रहता है। बजट वित्तमंत्री द्वारा रखा जाता है। बजट में उस खर्च को अलग से दिखाया जाता है जिसे राज्य की संचित निधि से वसूल किया जाता है तथा जिस पर विचार विमर्श तो होता है किंतु जिस पर सदन मतदान नहीं करता। दूसरे प्रकार का खर्च वह होता है जिसे राज्य की संचित निधि से निकाला तो जाता है किंतु जिस पर सदन न केवल विचार विमर्श करता वरन् उस पर मतदान भी करता है।

बजट प्रस्तुत करते समय वित्तमंत्री विधान सभा के सम्मुख एक भाषण देता है, जिसमें वह राज्य की वित्तीय स्थिति की विवेचना करता है तथा शासन की वित्तीय नीति की व्याख्या करता है। बजट के साथ एक वित्त विधेयक भी प्रस्तुत किया जाता है, जिसमें नए करों को लगाने अथवा पुराने करों में वृद्धि अथवा कमी के प्रस्ताव सम्मिलित होते हैं।

वित्तमंत्री के बजट भाषण के उपरांत पूरे बजट पर एक सामान्य चर्चा होती है। चर्चा के उपरांत सदन के सम्मुख बजट के प्राक्कलनों को अनुदानों की माँगों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक विभाग का मंत्री अपने विभाग से संबंधित माँगों को सदन के सम्मुख रखता है। सदन इन माँगों पर चर्चा करता तथा उन्हें स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करता है। वह उनमें कटौती भी कर सकता है।

सदन को माँगों में वृद्धि करने का अधिकार प्राप्त नहीं है। जब विधान सभा माँगों पर मतदान पूर्ण हो जाता है तब दोनों प्रकार के (राज्य की संचित निधि से वसूले गए तथा उससे निकाले गए) खर्चों को एक साथ मिलाकर उन्हें एक वार्षिक विनियोग विधेयक के

रूप में विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है तथा विधान सभा उसे उसी प्रकार पारित करती है जैसे कोई अन्य विधेयक पारित किया जाता है। तत्पश्चात् विधान सभा का अध्यक्ष उसे धन विधेयक के रूप में प्रमाणित करता है।

कोई धन विधेयक प्रारंभ में विधान परिषद् में प्रस्तुत नही किया जा सकता। जब विधान सभा किसी धन विधयेक को पारित कर देती है तब वह विधान परिषद् के पास भेज दिया जाता है। विधान परिषद् को उसे 14 दिनों के भीतर विधान सभा को लौटाना पड़ता है। विधान परिषद् उस विधेयक के संबंध में अपनी संस्तुतियाँ तो दे सकती है किंतु वह न तो उसे अस्वीकार कर सकती और न उसमें संशोधन ही कर सकती है। विधान सभा द्वारा पारित किए जाने के 14 दिनों के बाद विधेयक को दोनों सदनों द्वारा पारित समझ लिया जाता तथा राज्यपाल के पास उसकी सहमति के लिए भेज दिया जाता है तथा राज्यपाल को उस पर अपनी सहमति देनी पड़ती है।

### कार्यपालिका पर नियंत्रण

मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है। सभा को मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करने का अधिकार प्राप्त है। जब कभी ऐसा प्रस्ताव पारित हो जाता है तो समूची मंत्रिपरिषद् को त्यागपत्र देना पड़ता है।

विधान मंडल के दोनों सदन प्रश्न पूछ कर, पूरक प्रश्न पूछकर, अत्यावश्यक लोक महत्त्व के विषय पर चर्चा करके ध्यान आकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत कर के, कार्य-स्थगन प्रस्ताव पेश कर के तथा लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, लोक उद्यम समिति, शासकीय आश्वासन समिति, विशेषाधिकार समिति, प्रदत्त विधान समिति (Committee on subordinate legislation) इत्यादि के माध्यम से कार्यपालिका को नियंत्रित करते हैं। इनके कारण कार्यपालिका सदैव सतर्क रहती है।

### संवैधानिक संशोधन

संघीय स्वरूप को प्रभावित करने वाला कोई संविधान संशोधन विधेयक यदि संसद के दोनों सदनों के द्वारा पारित हो जाता है तो आधे से अधिक राज्यों के विधान मंडलों द्वारा उसकी पुष्टि आवश्यक है।

### निर्वाचन संबंधी अधिकार

राष्ट्रपति के निर्वाचन में जितना मताधिकार संसद के दोनों सदनों के सदस्यों को प्राप्त है उतना ही राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों को प्राप्त है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि राज्य के प्रशासन में राज्य के विधान मंडल की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। यह न केवल राज्य सूची तथा समवर्ती सूची से संबद्ध विषयों में विधि निर्माण करती वरन् मंत्रिपरिषद् पर नियंत्रण भी रखती है। मंत्रिपरिषद् उसी समय तक सत्तारूढ़ रह सकती है जब तक राज्य की विधान सभा का विश्वास उसे प्राप्त हो।

## राज्यपाल

राज्य की कार्यपालिका संबंधी समस्त शक्तियाँ राज्यपाल में सन्निहित होती हैं। वह प्रत्यक्ष रूप से अथवा अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से उसका उपयोग करता है।

उसकी नियुक्ति 5 वर्षों के लिए राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। वह राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यंत अपने पद पर आरूढ़ रहता है। राष्ट्रपति न केवल उसे उसके पद से हटा सकता है वरन् उसे एक राज्य से दूसरे राज्य में भी स्थानांतरित कर सकता है।

राज्यपाल संसद का तथा राज्य विधान मंडल के किसी भी सदन का सदस्य नहीं हो सकता। यदि कोई ऐसा सांसद अथवा विधायक राज्यपाल नियुक्त किया जाता है तो यह मान लिया जाता है कि जिस दिन वह राज्यपाल का पद ग्रहण करता है, उस दिन से उसने संसद अथवा विधान परिषद् अथवा विधान मंडल की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है।

पद ग्रहण करने से पूर्व वह उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश अथवा वरिष्ठतम न्यायाधीश के सम्मुख अपने पद की शपथ लेता है। इस शपथ में वह संविधान की रक्षा और परिरक्षा का वायदा करता है।

### कार्यपालिका शक्तियाँ

राज्य के समस्त कार्यपालिका कार्य राज्यपाल के नाम से किए जाते हैं। वह मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है। सुस्थापित रूढ़ि के अनुसार राज्यपाल उसी व्यक्ति को इस पद पर नियुक्त करता है जिसके बारे में उसको विश्वास हो कि वह विधान सभा के सदस्यों के बहुमत का विश्वास प्राप्त करने में समर्थ होगा। यह सुस्थापित रूढ़ि है कि विधान सभा में जिस दल का अथवा दल समूह का (किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है तो ) पूर्ण बहुमत है, उसी के नेता को वह मंत्रिपरिषद् के निर्माण के लिए आमंत्रित करता है। वह मुख्यमंत्री की सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता तथा उनमें पद वितरण करता है। इसके अतिरिक्त, वह राज्य के महाधिवक्ता तथा राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। राज्यपाल को राज्य सरकार के समस्त क्रियाकलापों की सूचना करने का अधिकार है।

### विधायी शक्तियाँ

चूँकि राज्यपाल विधान मंडल का अभिन्न अंग है अतः उसे कुछ विधायी शक्तियाँ प्राप्त हैं, जैसे वह विधान मंडल का सत्राह्वान करता, उसका सत्रावसान करता, विधान सभा को विघटित करता, विधान सभा के अधिवेशन अथवा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन को संबोधित करता है। वह किसी भी सदन अथवा दोनों सदनों को संदेश भेज सकता, विधान मंडल द्वारा पारित विधेयकों पर स्वीकृति देता तथा अध्यादेश जारी कर सकता है। यदि आम चुनाव के बाद उसको ऐसा लगता है कि विधान सभा में आंग्ल भारतीय समुदाय को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं प्राप्त है तो वह उस समुदाय के एक व्यक्ति को विधान सभा का सदस्य मनोनीत कर सकता है।

### वित्तीय शक्तियाँ

वह प्रत्येक वित्तीय वर्ष में वित्तमंत्री को विधान मंडल के सम्मुख वार्षिक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करने के लिए कहता है। राज्यपाल की संस्तुति के बिना कोई धन विधेयक विधान सभा में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। ऐसा कोई विधेयक जो राज्य की संचित निधि से खर्च निकालने की व्यवस्था करता हो, उस समय तक विधान मंडल द्वारा पारित नहीं किया जा सकता जब तक राज्यपाल इसकी संस्तुति न कर दे। राज्यपाल की संस्तुति के बिना अनुदान की किसी माँग को विधान मंडल के सम्मुख नहीं रखा जा सकता।

### न्यायिक शक्तियाँ

राज्यपाल को उस विषय संबंधी, जिस विषय पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सिद्ध दोष ठहराये गए किसी व्यक्ति के दंड को, क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति प्राप्त है।

## राज्यपाल की स्थिति

यदि हम राज्यपाल के उपर्युक्त अधिकारों पर दृष्टिपात करें तो ऐसा लगता है कि राज्यपाल एक बहुत शक्तिशाली अधिकारी है। किंतु वास्तविकता इससे सर्वथा भिन्न है। हमने संसदीय शासन प्रणाली को अपनाया है, जिसमें मंत्रिपरिषद् विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी होती है, अतः वास्तविक शक्तियाँ मंत्रिपरिषद् को प्राप्त होती हैं, न कि राज्यपाल को। किंतु असाधारण स्थितियों में राज्यपाल को अपने विवेक से काम करना पड़ सकता है। उदाहरणार्थ, यदि विधान सभा में किसी एक दल अथवा दल समूह को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं है तथा मुख्यमंत्री पद के लिए दो दावेदार हों तो वह इस पद पर किसे नियुक्त करेगा? इसी प्रकार, यदि कोई सत्तारूढ़ पक्ष विधान सभा में अल्पमत में आ जाए तथा मुख्यमंत्री राज्यपाल को विधान सभा को विघटित करने की सलाह देता है तो क्या राज्यपाल उक्त सलाह को मानने के लिए बाध्य है?

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि साधारणतया तो राज्यपाल को एक संवैधानिक प्रमुख के रूप में कार्य करना पड़ता है किंतु असाधारण स्थितियों में उसे इच्छानुसार कार्य करने के अवसर प्राप्त हो सकते हैं।

इसके बावजूद राज्यपाल की शक्तियों को लेकर काफी विवाद उठ खड़े हुए। चूँकि वह राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता तथा उसके प्रसाद पर्यन्त सत्तारूढ़ रहता है, अतः साधारणतया धारणा यह है कि उसे राष्ट्रपति की सलाह के अनुसार आचरण करना पड़ता है और वह उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। किंतु साथ ही उसे मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार भी कार्य करना पड़ता है। इस प्रकार उसे दो स्वामियों की सेवा करनी पड़ती है। यदि दोनों की सलाहों में परस्पर विरोध हो तो वह किसकी सलाह मानेगा? मोटे तौर पर अधिकांश राज्यपालों ने राष्ट्रपति की सलाह के अनुसार काम किया। इसके कारण राज्य सरकारों के समर्थकों में विरोध की भावना उत्पन्न हो गई। प्रायः यह देखा गया है कि समान स्थितियों में भिन्न-भिन्न निर्णय लिए गए और उन सबका परिणाम सदैव केंद्र में सत्तारूढ़ दल के पक्ष में रहा। उदाहरणार्थ, चौथे आम चुनाव के बाद उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान की विधान सभाओं में किसी दल को पूर्ण बहुमत नहीं मिला। दोनों राज्यों में मुख्यमंत्री पद के दो दावेदार थे : एक कांग्रेसी था एवं दूसरा विरोध पक्ष के एक दल समूह (संयुक्त विधायक दल) का। दोनों राज्यों के राज्यपालों ने इस समस्या का समाधान अलग-अलग ढंग से किया। राजस्थान के राज्यपाल संपूर्णानंद ने विधान सभा में सबसे बड़े दल के नेता को मुख्यमंत्री पद के लिए आमंत्रित किया तथा कहा कि यदि विरोध पक्ष बहुमत में है तो विधान मंडल में मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर सकता है। वे इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि स्वयं सदस्यों की गणना कर यह निर्णय करें कि किसको विधान सभा में बहुमत प्राप्त है। इसके ठीक विपरीत, उत्तरप्रदेश के राज्यपाल विश्वनाथ दास ने दोनों दावेदारों से अपने अपने समर्थकों की सूची माँगी और जब उन्होंने देखा कि कुछ नाम दोनों सूचियों में हैं तो उन्होंने उन व्यक्तियों को बुलाकर स्वतः यह पता लगाया कि वह किस दल अथवा समूह के पक्ष में हैं और इस प्रकार यह निर्णय किया कि किस दावेदार को विधान सभा में बहुमत प्राप्त है। दोनों ही राज्यों में यह देखा गया कि राज्यपालों का निर्णय कांग्रेस के पक्ष में रहा जो उस समय केंद्र में सत्तारूढ़ थी। इसका जमकर विरोध

हुआ और माँग उठी कि राज्यपालों के दिग्दर्शन के लिए स्पष्ट नियम होने चाहिए। किंतु केंद्रीय सरकार ने इस माँग को मंजूर नहीं किया। इतना ही नहीं, जब संसद ने 1976 में 42वाँ संविधान अधिनियम पारित किया तो उसमें राष्ट्रपति के लिए तो यह नियम बना दिया कि वह मंत्रिपरिषद् की सलाह मानने के लिए बाध्य है किंतु राज्यपाल के लिए ऐसा नहीं किया गया। राज्यपाल की स्थिति को जानबूझ कर अस्पष्ट रखा गया ताकि राज्य सरकार पर केंद्र की पकड़ मजबूत रहे।

राज्यपाल के स्वविवेक संबंधी अधिकारों के बारे में भी काफी विवाद है। कुछ आलोचकों का यह कहना है कि नागालैण्ड के राज्यपाल (जिले का प्रशासन करते समय) अथवा उस राज्यपाल को जिसे किसी संघीय क्षेत्र का प्रशासन करना है (जिसमें वह अपने राज्य की मंत्रिपरिषद् की सलाह नहीं लेता है) को छोड़, किसी भी अन्य राज्यपाल को स्वविवेक संबंधी कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। किंतु आलोचकों के दूसरे वर्ग का कहना है कि राज्यपाल को स्वविवेक संबंधी कुछ अधिकार निश्चित रूप से प्राप्त हैं। राज्यपाल अपने विवेक से यह निश्चित करता है कि किन-किन विषयों में उसे स्वविवेक से काम लेना है तथा किन-किन विषयों में उसे मंत्रिपरिषद् की सलाह के अनुसार काम करना है। इस प्रकार, राज्यपाल को स्वविवेक संबंधी अधिकारों को निर्णीत करने का व्यापक अधिकार प्राप्त है। स्वयं राज्यपालों, न्याय-विदों, संविधान विशेषज्ञों तथा विशिष्ट राज नेताओं के बार-बार प्रयत्न करने पर भी कोई निश्चित सिद्धांत निर्धारित नहीं किए गए कि राज्यपाल किस प्रकार आचरण करे।

## राज्य की मंत्रिपरिषद्

भारतीय संविधान राज्य की कार्यपालिका शक्तियों को राज्यपाल में सन्निहित करता है किंतु राज्यपाल वास्तव में एक संवैधानिक प्रमुख होता है। उसकी शक्तियों के उपयोग में राज्य मंत्रिपरिषद् उसकी सहायता करती एवं उसे परामर्श देती है। मंत्रिपरिषद् का अध्यक्ष राज्य का मुख्यमंत्री होता है।

राज्यपाल पहले मुख्यमंत्री को नियुक्त करता है तत्पश्चात् उसके परामर्श से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करता है। राज्यपाल किसी ऐसे व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है जिसके बारे में उसकी यह धारणा है कि वह विधानसभा के सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त कर सकेगा । यदि विधान सभा में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त है तथा वह अपना नेता निर्वाचित कर लेता है तो राज्यपाल को उस नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करना पड़ता है। यदि विधान सभा में किसी एक दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं है तथा दो या दो से अधिक दल मिलकर, समान कार्यक्रम के आधार पर, एक संयुक्त विधायक दल बना लेते हैं तथा अपना एक नेता भी चुन लेते हैं तो राज्यपाल उस नेता को मुख्यमंत्री के लिए आमंत्रित करता है।

तत्पश्चात् राज्यपाल मुख्यमंत्री से उन व्यक्तियों के नामों की सूची माँगता है जिन्हें वह मंत्री पद पर नियुक्त करना चाहता है। राज्यपाल को ऐसे व्यक्तियों को, जिनकी संस्तुति मुख्यमंत्री ने की है, मंत्री पद पर नियुक्त करना पड़ता है।

मंत्रियों के तीन वर्ग होते हैं : 1.केबिनेट मंत्री, 2.राज्य मंत्री तथा 3. उप मंत्री । केबिनेट मंत्रियों की एक छोटी समिति होती है जिसमें वे मंत्री नियुक्त किए

जाते हैं जिनका दल में महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा जो महत्त्वपूर्ण पदों को धारण करते हैं । इसकी बैठकें प्रायः होती हैं तथा शासन के महत्त्वपूर्ण निर्णय इसी के द्वारा लिए जाते हैं । केबिनेट मंत्री एक अथवा अधिक विभागों का अध्यक्ष होता है। राज्य मंत्री दो प्रकार के होते हैं । कुछ राज्य मंत्रियों को अपने मंत्रालय का स्वतंत्र कार्य भार दिया जाता है तथा कुछ राज्य मंत्री किसी केबिनेट मंत्री की देख-रेख में कार्य करते हैं । जब कभी उनके मंत्रालय से संबद्ध किसी विषय पर केबिनेट में मंत्रणा होती है तो राज्य मंत्री को केबिनेट की उक्त बैठक में बुलाया जा सकता है। उपमंत्री या तो किसी केबिनेट मंत्री अथवा किसी राज्य मंत्री की देखरेख में कार्य करता है। उसका प्रमुख कार्य केबिनेट मंत्री अथवा राज्य मंत्री को, जैसी भी स्थिति हो, उनके कार्यों को संपादित करने में सहायता देना होता है।

### मुख्यमंत्री की स्थिति

मंत्रिपरिषद् में मुख्यमंत्री को अद्वितीय स्थान प्राप्त रहता है। वही अन्य मंत्रियों का चयन करता है। जब कभी मुख्यमंत्री तथा मंत्री में किसी विषय पर मतभेद उत्पन्न हो जाए तो उस मंत्री को मुख्यमंत्री की बात माननी पड़ती है। मुख्यमंत्री किसी भी मंत्री से त्यागपत्र माँग सकता है। यदि वह त्यागपत्र नहीं देता है तो मुख्यमंत्री के परामर्श पर राज्यपाल उसे मंत्रिपरिषद् से हटा सकता है।

मुख्यमंत्री मंत्रिपरिषदों की बैठकों की अध्यक्षता करता है। मंत्रिपरिषद् के निर्णयों को वही राज्यपाल तक पहुँचाता है। जब कभी राज्यपाल कोई बात मंत्रिपरिषद् तक पहुँचाना चाहता है तो वह मुख्यमंत्री के द्वारा ही यह कार्य करता है। मुख्यमंत्री ही शासन का प्रमुख प्रवक्ता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अन्य मंत्रियों की तुलना में मुख्यमंत्री अत्यधिक शक्तिशाली है। किंतु मुख्यमंत्री सर्व शक्तिमान नहीं है। अपनी मंत्रिपरिषद् का निर्माण करते समय उसे कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है, जैसे, समाज के विभिन्न वर्गों, विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों तथा दल के विभिन्न विचार समूहों का प्रतिनिधित्व ।

इन सब बातों के परिणाम स्वरूप मंत्रियों के चयन में मुख्यमंत्री की पसंद अत्यंत सीमित हो जाती है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि मंत्रिपरिषद् में लगभग आधे सदस्य ऐसे होते हैं जिन्हें मुख्यमंत्री चाहता है तथा लगभग आधे ऐसे होते हैं जिन्हें मुख्यमंत्री को लेना पड़ता है क्योंकि उसके पास कोई और विकल्प नहीं होता । यही कारण है कि मुख्यमंत्री को समकक्षों में प्रथम कहा जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि सभी मंत्री बराबर हैं किंतु मुख्यमंत्री को उनमें प्रथम स्थान प्राप्त है।

### मंत्रिपरिषद् का सामूहिक उत्तरदायित्व

समूची मंत्रिपरिषद् की बैठक यदा-कदा ही होती है। केबिनेट की बैठकें प्रायः होती रहती हैं । सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय केबिनेट की बैठकों में लिए जाते हैं । परंतु उन सब निर्णयों का उत्तरदायित्व मंत्रिपरिषद् ले लेती है। ऐसा हो सकता है कि कोई एक मंत्री, केबिनेट के निर्णय से सहमत न हो किंतु वह इसे सार्वजनिक रूप से प्रकट नहीं कर सकता, जब तक कि वह मंत्रिपरिषद् से त्यागपत्र नहीं दे दे । मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि किसी एक मंत्री के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त किया जाए तो वह समूची मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास माना जाएगा । ऐसी स्थिति में मुख्यमंत्री

सहित सभी मंत्रियों को अपदस्थ होना पड़ता है। विधान मंडल के दोनों सदनों के सदस्य मंत्रिपरिषद् पर, प्रश्न पूछ कर, पूरक प्रश्न पूछ कर, कार्य स्थगन प्रस्ताव ला कर, ध्यान आकर्षण की सूचना देकर तथा विभिन्न संसदीय समितियों, जैसे लोक लेखा समिति, प्राक्कलन समिति, शासकीय आश्वासन समिति, लोक उद्यम समिति, विशेषाधिकार समिति, प्रदत्त-विधान समिति इत्यादि के द्वारा नियंत्रण रखते हैं ।

प्रशासन से संबंधित सभी नीतिगत निर्णय मंत्रिपरिषद् लेती है। यह सभी नीतिगत निर्णयों के कार्यान्वयन की देख रेख भी करती है। यह विधेयकों को तैयार करती तथा विधान मंडल में उन्हें पारित करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है ताकि वे अधिनियम बन सकें । यह बजट तैयार करती तथा राज्य शासन की आय और व्यय का नियमन करती है। यथार्थ में,मंत्रिपरिषद् ही राज्य का वास्तविक शासन करती है।

## उच्च न्यायालय

यद्यपि कभी-कभी दो या दो से अधिक राज्यों को मिलाकर एक उच्च न्यायालय की व्यवस्था होती है तथापि अधिकांश राज्यों में उनका अपना एक उच्च न्यायालय होता है। उच्च न्यायालय किसी राज्य की सर्वोच्च न्यायिक सत्ता होती है। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश और कुछ अन्य न्यायाधीश होते हैं । अन्य न्यायाधीशों की संख्या आवश्यकतानुसार राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित की जाती है। मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा संबंधित राज्य के राज्यपाल से परामर्श करने के उपरांत करता है। किंतु अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करते समय राज्यपाल भारत के मुख्य न्यायाधीश एवं संबंधित राज्य के राज्यपाल के साथ ही साथ उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भी परामर्श करता है।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए किसी व्यक्ति का भारत का नागरिक होना तथा कम से कम 10 वर्षों तक न्यायिक पद पर कार्य करने अथवा कम से कम 10 वर्षों तक उच्च न्यायालय में वकील के रूप में कार्य करने का अनुभव होना चाहिए।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को संसद की विधि द्वारा निर्धारित वेतन भत्ते आदि प्राप्त होते हैं। उन्हें संसद की विधि द्वारा निर्धारित विशेषाधिकार तथा छुट्टी और पेंशन संबंधी अधिकार भी प्राप्त रहते हैं । किंतु एक बार नियुक्त हो जाने के बाद संसद ऐसा कोई परिवर्तन नहीं कर सकती जिससे उनके वेतन, भत्ते, विशेषाधिकार, छुट्टी, पेंशन आदि में कटौती होती हो ।

उच्च न्यायालय का प्रत्येक न्यायाधीश, जिसमें मुख्य न्यायाधीश भी सम्मिलित है, 62 वर्ष की आयु पर्यंत कार्यरत रहता है। वह अपने पद से, राष्ट्रपति को संबोधित कर, कभी भी त्यागपत्र दे सकता है। उसे उसी प्रकार अपदस्थ किया जा सकता है जिस प्रकार उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश पद मुक्त किया जाता है।

जिस व्यक्ति ने उच्च न्यायालय में स्थायी न्यायाधीश के रूप में कार्य किया है वह उस न्यायालय में वकालत नहीं कर सकता । किंतु वह किसी दूसरे उच्च न्यायालय में अथवा उच्चतम न्यायालय में वकालत कर सकता है।

राष्ट्रपति आवश्यकतानुसार किसी भी उच्च न्यायालय में न्यायाधीशों की संख्या में वृद्धि कर सकता है अथवा अतिरिक्त न्यायाधीशों की नियुक्ति

कर सकता है। राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के किसी अवकाश प्राप्त न्यायाधीश को भी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का अनुरोध कर सकता है।

उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय होता है। उसके निर्णय आधिकारिक माने जाते हैं तथा उनके आधार पर न्यायालय अपना निर्णय देते हैं। उच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने विरुद्ध दुष्प्रचार करने वाले अथवा उसके निर्णयों को प्रभावित करने वाले व्यक्तियों पर अवमानना का मुकदमा दायर कर सके।

भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श कर राष्ट्रपति उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश का स्थानांतरण किसी दूसरे उच्च न्यायालय में कर सकता है।

### उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

उच्च न्यायालय को दीवानी तथा फ़ौजदारी मामलों में जिला न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार प्राप्त है। कुछ मामलों में उसे प्रारंभिक क्षेत्राधिकार भी प्राप्त है।

### प्रारंभिक क्षेत्राधिकार

प्रत्येक उच्च न्यायालय को नौकाधिकरण, इच्छा-पत्र, तलाक, विवाह, कंपनी, न्यायालय की अवमानना तथा कुछ राजस्व संबंधी प्रकरणों में प्रारंभिक क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं। प्रत्येक उच्च न्यायालय को नागरिकों के मौलिक अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश अथवा लेख, विशेषकर बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, उत्प्रेक्षण तथा अधिकार पृच्छा के लेख जारी करने के अधिकार प्राप्त हैं।

### अपीलीय क्षेत्राधिकार

यह अधीनस्थ न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपील सुन सकता है। फौजदारी मामलों में अगर सत्र न्यायाधीश ने मृत्युदंड दिया हो तो उच्च न्यायालय में उसके विरुद्ध अपील हो सकती है। दीवानी मामलों में उच्च न्यायालय में उन सब मामलों की अपील हो सकती है जो पाँच लाख रुपये या उससे अधिक संपत्ति से संबद्ध हों। यह पेटेंट और डिजाइन, उत्तराधिकार, भूमि-प्राप्ति, दिवालियापन और संरक्षकता आदि मामलों में भी अपील सुनता है।

### उच्च न्यायालय में मुकदमों का हस्तांतरण

यदि किसी उच्च न्यायालय को ऐसा लगे कि जो अभियोग अधीनस्थ न्यायालय में विचाराधीन है, वह विधि के किसी सारगर्भित प्रश्न से संबद्ध है तो वह उसे अपने यहाँ हस्तांतरित कर, या तो उसका निपटारा स्वयं कर देता या विधि से संबद्ध प्रश्न को निपटा कर अधीनस्थ न्यायालय को निर्णय के लिए वापस भेज देता है।

### प्रशासकीय अधिकार

उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों के अधीक्षण का न्यायिक तथा प्रशासकीय दोनों क्षेत्रों में अधिकार है। उसे जिला न्यायालयों तथा अधीनस्थ न्यायालयों में नियुक्ति, पदावनति, पदोन्नति तथा छुट्टियों के संबंध में नियम बनाने का अधिकार है। इस प्रकार, उच्च न्यायालय राज्य के न्यायिक कार्यों में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। किंतु यह राज्य में अपील का सर्वोच्च न्यायालय नहीं है। राज्य सूची से संबद्ध विषयों में भी उच्च न्यायालय के निर्णयों के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील हो सकती है।

## अभ्यास

1. विधान परिषद् के गठन का विवरण दीजिए। विधान सभा का गठन कैसे किया जाता है?
2. राज्य में धन विधेयक पारित करने की प्रक्रिया पर प्रकाश डालिए।
3. यदि साधारण विधेयक पर राज्य विधान मंडल के दोनों सदनों में मतभेद उत्पन्न हो जाए तो उसका समाधान कैसे किया जाता है?
4. राज्यपाल को कौन नियुक्त करता है? संविधान द्वारा इस पद के लिए क्या योग्यताएँ निर्धारित की गई हैं?
5. राज्यपाल की कार्यपालिका शक्तियों का विवरण दीजिए।
6. राज्यपाल किन स्थितियों में स्वविवेक का उपयोग करता है?
7. राज्य की मंत्रिपरिषद् का निर्माण कैसे किया जाता है ?
8. सामूहिक उत्तरदायित्व से आप क्या समझते हैं ?
9. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
   क. मंत्रियों के वर्ग।
   ख. मंत्रिपरिषद् के कार्य।
   ग. उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार

अध्याय 7

# स्थानीय शासन संस्थाएँ

## भारतीय नगरों की स्थानीय शासन संस्थाएँ

यदयपि भारतीय संविधान में राज्य की नीति के एक निदेशक तत्व में गाँवों में ग्राम पंचायत स्थापित करने से संबंधित एक प्रावधान था तथापि नगरों में स्थानीय स्वशासी संस्थाएँ स्थापित करने के संबंध में कोई प्रावधान नहीं था। इस रिक्तता की पूर्ति 1992 में पारित संविधान के 74 वें संशोधन के दवारा की गई। इस संशोधन के दवारा नगरों में स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ स्थापित करने तथा उनके प्रबंध के संबंध में व्यवस्था की गई।

पूर्व ऐतिहासिक काल में भारतीय नगरों में स्थानीय स्वशासी संस्थाओं का अस्तित्व था। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से पता चलता है कि उस काल में नगरों में निर्वाचित परिषदें विदयमान थीं जो अपने कार्यों का प्रबंध स्वयं करती थीं। किंतु नगरीय प्रशासन की आधुनिक व्यवस्था की स्थापना ब्रिटिश शासन काल में ही हुई। 1870 के लॉर्ड मेयो के प्रस्ताव में नगर की स्वशासी संस्थाओं को मजबूत बनाने तथा उनमें भारतीयों के सहयोग में वृद्धि करने की व्यवस्था थी। 1882 का लॉर्ड रिपन का प्रस्ताव स्थानीय स्वशासन का मेग्नाकार्टा माना जाता है, तथा इसी के कारण लॉर्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन के जनक की उपाधि से विभूषित किया गया। उसने स्थानीय स्वशासी संस्थाओं का जाल बिछाने, वित्तीय विकेंद्रीकरण करने स्थानीय संस्थाओं के गठन में निर्वाचन व्यवस्था अपनाने तथा उन संस्थाओं में अधिकारिक सदस्यों की संख्या एक तिहाई से अधिक न होने का समर्थन किया। 1907 में विकेंद्रीकरण के संबंध में एक शाही आयोग की नियुक्ति की गई जिसको यह जाँच पड़ताल करने का कार्य सौंपा गया कि स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की असफलता के पीछे क्या कारण थे। इस आयोग के मतानुसार कड़ा अधिकारिक नियंत्रण, अत्यधिक सीमित मताधिकार, दुर्बल संसाधन, शिक्षा का अभाव तथा प्रतिबद्ध व्यक्तियों की कमी, असफलता के मुख्य कारण थे।

1919 के भारतीय शासन अधिनियम के अनुसार स्थानीय स्वशासन एक हस्तांतरित विषय बन गया तथा यह एक उत्तरदायी मंत्री के अधीन आ गया। इस अधिनियम ने स्थानीय संस्थाओं के करारोपण की शक्ति में वृद्धि की, मताधिकार में वृद्धि की, मनोनीत सदस्यों की संख्या में कमी की तथा सांप्रदायिक निर्वाचक मंडल के सदस्यों की संख्या में अभिवृद्धि की। परिणाम स्वरूप स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को संचालित करने का उत्तरदायित्व जिलाधिकारियों के हाथों से निकलकर निर्वाचित सभापतियों के हाथों में आ गया।

1921 से 37 के बीच नगर की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के द्वारा किए गए कार्यों को न तो पूर्णतया असफल कहा जा सकता और न पूर्णतया सफल।

साइमन कमीशन का, जिसने 1919 के भारतीय शासन अधिनियम के क्रियान्वित स्वरूप की समीक्षा की थी, कहना है कि प्रत्येक प्रांत में ..... कुछ स्थानीय संस्थाओं ने अपना कार्य बड़ी सफलता से किया ..... कुछ की असफलता प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती है, किंतु अधिकांश का कार्य इन दोनों के बीच का रहा।

1935 के भारतीय शासन अधिनियम के अनुसार द्वैध शासन प्रणाली का अंत कर दिया गया तथा पूर्ण प्रांतीय स्वायत्तता प्रारंभ की गई। 1937 की पहली अप्रैल को लोकप्रिय मंत्रिमंडलों की स्थापना हुई तथा स्थानीय स्वशासन को नई प्रेरणा प्राप्त हुई। किंतु 1939 में लोकप्रिय मंत्रिमंडलों की सलाह लिए बिना जब भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में झोंक दिया गया तो उन्होंने विरोध स्वरूप त्यागपत्र दे दिया। परिणाम-स्वरूप स्थानीय स्वशासन को पुनः एक धक्का लगा।

युद्ध की समाप्ति के उपरांत 1946 में प्रांतीय विधान सभाओं का निर्वाचन हुआ। नवगठित मंत्रिमंडलों ने पुनः स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के उत्थान का बीड़ा उठाया। 1947 में भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई और देश में नया उत्साह जगा। परिणाम-स्वरूप विभिन्न स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के निर्वाचन किए गए। पंचवर्षीय योजनाओं में भी समय-समय पर नगर पालिकाओं की समस्याओं पर तथा नगरीकरण की बढ़ती हुई माँगों की पूर्ति करने में इनकी असमर्थता पर प्रकाश डाला गया। केंद्रीय सरकार ने भी समय पर नगरीय संस्थाओं की उन्नति के प्रति अपनी चिंता दिखाई तथा इस संबंध में विभिन्न आयोगों और समितियों की स्थापना की, जिन्होंने भारतीय नगरों के विकास को नई दिशा देने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

इन संस्थाओं द्वारा दिए गए सुझावों तथा संस्तुतियों के परिणाम-स्वरूप 1992 में 74वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा नगरों में स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की स्थापना, उनकी शक्तियाँ तथा कार्यों के संबंध में वैधानिक प्रावधान किए गए। इस अधिनियम के प्रावधानों को हम दो वर्गों : अनिवार्य तथा ऐच्छिक में वर्गीकृत कर सकते हैं। *अनिवार्य प्रावधान इस प्रकार है :* नगर पंचायतों, नगर पालिकाओं और नगर महापालिकाओं का गठन, स्थानीय संस्थाओं में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थानों का आरक्षण, महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थानों का आरक्षण, पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचनों की व्यवस्था करने के लिए गठित राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा नगरों की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के निर्वाचन की व्यवस्था करना, पंचायती राज संस्थाओं के वित्तीय कार्यों के संदर्भ में गठित वित्त आयोग द्वारा नगरों की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की वित्तीय व्यवस्था की भी देख-रेख करना तथा नगरों की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष निर्धारित करना और इसके पूर्व विघटित किए जाने पर 6 महीनों के भीतर निर्वाचन करने की व्यवस्था करना आदि।

*ऐच्छिक प्रावधान इस प्रकार हैं :* संघीय संसद और राज्य के विधान मंडलों के सदस्यों को इन संस्थाओं में मताधिकार प्रदान करना, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करना, इन्हें कर, शुल्क, पथ-कर और फीस लगाने से संबद्ध वित्तीय शक्तियाँ प्रदान करना, इन संस्थाओं को संविधान के 74 वें संशोधन द्वारा संविधान में जोड़ी गई 12वीं अनुसूची में वर्णित कुछ अथवा समस्त कार्यों को संपन्न करने

के लिए ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करना जो उन्हें प्रदत्त उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने में समर्थ बनाने के लिए आवश्यक हों तथा आर्थिक विकास के लिए योजना बनना आदि।

### नगरों की स्वशासी संस्थाओं का संगठन

अपने संशोधित स्वरूप में संविधान परिवर्तनोन्मुखी क्षेत्र (अर्थात् ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्र में परिवर्तन के इच्छुक क्षेत्र) के लिए नगर पंचायत, छोटे नगरीय क्षेत्र के लिए नगरपालिका परिषद् का तथा बृहत्तर नगरीय क्षेत्र के लिए नगर निगमों की स्थापना का प्रावधान करता है। किंतु किसी ऐसे क्षेत्र में नगरपालिका की स्थापना नहीं हो सकती जो किसी औद्योगिक संस्थान के क्षेत्र में आता हो तथा जहाँ या तो उस संस्थान ने नगरपालिका सेवाएँ उपलब्ध करायी हैं या उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है।

नगर की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं में सभी स्थान क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाएँगे। किंतु राज्य विधान मंडल उन संस्थाओं में विधि द्वारा, नगर की स्वशासी संस्थाओं के प्रशासन की विशेष जानकारी अथवा अनुभव रखने वाले व्यक्ति के प्रतिनिधित्व, उनके क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करने वाले सांसदों एवं राज्य विधान मंडल के सदस्यों तथा वार्ड समितियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था कर सकता है।

नगर के उन स्वशासी क्षेत्रों में जिनकी जनसंख्या तीन लाख या उससे अधिक हो, एक या अधिक वार्डों को मिलाकर वार्ड समितियाँ गठित की जानी चाहिए। राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा वार्ड समितियों के संगठन, उनके प्रादेशिक क्षेत्र तथा जिस विधि द्वारा उनमें स्थान भरे जाने चाहिए, इन सब की व्यवस्था कर सकता है। विधान मंडल को यह भी अधिकार है कि वह वार्ड समितियों के अतिरिक्त अन्य समितियों के गठन की व्यवस्था भी कर सकता है।

नगर की प्रत्येक स्वशासी संस्था में अनुसूचित जातियों तथा जन जातियों के, उनकी जनसंख्या के अनुपात में, स्थान आरक्षित रखे जाने चाहिए। अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के लिए आरक्षित इन स्थानों में एक तिहाई स्थान इन जातियों की महिलाओं के लिए आरक्षित रखे जाने चाहिए।

इसी प्रकार, राज्य विधान मंडल द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार नगरों की स्वशासी संस्थाओं के अध्यक्षों में से भी, अनुसूचित जातियों, तथा महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित रखे जाने चाहिए। राज्य का विधान मंडल चाहे तो पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए भी इन संस्थाओं में (सदस्यता अथवा अध्यक्षता के लिए) स्थान आरक्षित रख सकता है।

कोई भी व्यक्ति जिसने 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली, इन संस्थाओं के लिए चुनाव लड़ सकता है। इन संस्थाओं के लिए कराए जाने वाले सभी निर्वाचनों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार कराने का और उन सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण, पंचायतीराज संस्थाओं के निर्वाचन के संदर्भ में गठित राज्य निर्वाचन आयोग करेगा।

इन संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष होना चाहिए। उनको इससे पूर्व भी विघटित किया जा सकता है, किंतु ऐसा करने से पूर्व उन्हें अपनी बात कहने का युक्ति-युक्त अवसर दिया जाना चाहिए। इन संस्थाओं का कार्यकाल समाप्त होने के पूर्व ही नवीन निर्वाचन की व्यवस्था की जानी चाहिए। किसी संस्था के विघटन के उपरांत 6 महिनों की अवधि के भीतर ही नवीन निर्वाचन कर लिए जाने चाहिए।

राज्य विधान मंडल इन संस्थाओं की शक्ति तथा सत्ता में वृद्धि कर सकता है ताकि ये स्वशासी संस्थाओं के रूप में कार्य करने में समर्थ हो सकें। वह इन संस्थाओं को ऐसे कर, शुल्क, पथ-कर और फीस आदि निर्धारित करने, संग्रहीत करने और विनियोजित करने के लिए अधिकृत कर सकता है जिन्हें वह उचित समझे। वह इन्हें राज्य की संचित निधि से अनुदान देने की भी व्यवस्था कर सकता है। वह ऐसी निधि के गठन की व्यवस्था भी कर सकता है जिसमें उनके द्वारा प्राप्त सभी धन राशियाँ जमा हो सकें तथा जिससे आवश्यकतानुसार धन निकाला जा सके।

### वित्त आयोग

पंचायती राज संस्थाओं के संदर्भ में गठित वित्त आयोग को नगरों की स्वायत्तशासी संस्थाओं की वित्तीय स्थिति की भी समीक्षा करनी चाहिए तथा उसे राज्यपाल को उन सिद्धांतों के संबंध में संस्तुति करना चाहिए जिनके आधार पर राज्य द्वारा लगाए गए करों, शुल्कों, पथ करों और फीस को राज्य और नगरीय संस्थाओं के बीच वितरित किया जाए। उन करों, शुल्कों, पथ करों और फीस का निर्धारण किया जाए जिन्हें नगरीय संस्थाएँ लगा सकें तथा विनियोजित कर सकें; राज्य की संचित निधि से नगरीय संस्थाएँ सहायता अनुदान प्राप्त कर सकें तथा इन संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के उपाय बता सकें।

### जिला योजना समिति

प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति गठित की जानी चाहिए जो जिले की पंचायतों तथा नगरीय संस्थाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं को संग्रहीत करके पूरे जिले के लिए एक विकास योजना का प्रारूप तैयार कर सके। योजना समिति को योजना का ऐसा प्रारूप बनाते समय पंचायतों तथा नगरीय संस्थाओं के बीच जो समान हित हो उनका ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक जिला योजना समिति के अध्यक्ष को जिले की योजना को राज्य सरकार के पास अग्रसारित करना चाहिए।

### महानगर योजना समिति

10 लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र को, जिसमें एक या अधिक जिले समाविष्ट हों, तथा जो दो या दो से अधिक नगरीय संस्थाओं अथवा पंचायतों से मिलकर बनता हो, राज्य का राज्यपाल एक महानगर क्षेत्र घोषित कर सकता है। प्रत्येक महानगर क्षेत्र में, उस क्षेत्र के लिए विकास योजना तैयार करने के लिए एक महानगर योजना समिति होनी चाहिए। राज्य का विधान मंडल विधि द्वारा, महानगर समिति के गठन तथा उसके सदस्यों की नियुक्ति की प्रक्रिया, समिति में संघ और राज्य सरकारों के प्रतिनिधित्व का निर्धारण तथा समिति के अध्यक्षों के चयन की प्रक्रिया की व्यवस्था करेगा। किंतु ऐसी समितियों में कम से कम दो तिहाई सदस्य नगरीय संस्थाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा तथा महानगर क्षेत्र की पंचायतों के अध्यक्षों द्वारा नगरीय संस्थाओं और पंचायतों की जनसंख्या के अनुपात में, निर्वाचित किए जाने चाहिए। प्रत्येक महानगर योजना समिति को विकास योजना का प्रारूप तैयार करते समय महानगर क्षेत्र में स्थित नगरीय संस्थाओं तथा पंचायतों द्वारा तैयार योजनाओं तथा उनके बीच जो समान हित हों उनका ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक महानगर योजना समिति के अध्यक्ष को चाहिए कि वह विकास योजना को राज्य सरकार को अग्रसारित करे।

**नगरों की स्थानीय शासकीय संस्थाओं के कार्य**

यद्यपि 1992 के 74वें संविधान संशोधन द्वारा स्थानीय स्वशासी संस्थाओं के कार्यों में आने वाली कुछ बाधाओं को दूर कर दिया गया तथापि यह बड़ी दुखःद बात है कि ग्रामीण और नगरीय दोनों स्तरों में लोकतंत्रीय अवधारणा की जड़ें मजबूत नहीं हो सकीं। प्रशासन के राजनीतिकरण, निर्वाचित संस्थाओं में अपराधिक तत्वों के प्रवेश, अनियंत्रित भ्रष्टाचार, जातीय एवं समूह के आधार पर समाज के विभाजन, लोक हित की अपेक्षा व्यक्तिगत अभ्युदय का प्राधान्य तथा निर्वाचन से संबंधित भ्रष्टाचार के कारण समूचा वातावरण दूषित एवं विषाक्त हो गया है।

## ग्रामों की स्थानीय शासन संस्थाएँ

भारतीय संविधान में प्रारंभ में शासन के केवल दो स्तरों, केंद्रीय तथा राज्यीय, की ही व्यवस्था थी। राज्य की नीति के एक निदेशक तत्व में कहा गया कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों। उसमें कहीं भी स्थाई स्वशासी संस्थाओं के संगठन, शक्तियों तथा कार्यों से संबंधित कोई प्रावधान नहीं था। संविधान के दो संशोधानों 1992 के 73वें संविधान संशोधन तथा 1992 के ही 74वें संविधान संशोधन के द्वारा क्रमशः गाँवों की स्थानीय स्वशासी तथा नगरों की स्वशासी संस्थाओं के संगठन से संबंधित प्रावधान किए गए। इस प्रकार, अब संविधान में शासन के एक तीसरे स्तर, स्थानीय स्वशासन, की भी व्यवस्था है।

प्राचीन भारत में प्रत्येक गाँव में एक ग्राम पंचायत होती थी जो एक स्वायत्तशासी संस्था के रूप में कार्य करती थी। ये पंचायतें राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त थीं। सर चार्ल्स मेटकॉफ के अनुसार जब किसी को स्थायित्व प्राप्त नहीं रहता, तब गाँव समाज स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं, राजकुलों का अंत हो जाता है क्रांति के बाद क्रांति होती है, हिंदू, पठान, मुगल, मराठा, सिख और अंग्रेज एक के बाद एक सत्ता रूढ़ होते हैं, किंतु गाँव समाज सदैव एक सा रहता है। ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक काल में ग्राम पंचायतों की जीवन शक्ति तथा महत्ता समाप्त हो गई। गाँवों के झगड़े, सुनवाई तथा निर्णय के लिए, नगर के न्यायालयों के पास लाए जाने लगे। 19वीं शताब्दी में बंबई और मद्रास प्रेसीडेंसियों में उन्हें संगठित करने के कुछ प्रयत्न किए गए, किंतु तत्कालीन जिलाधिकारियों ने उन्हें प्रोत्साहित नहीं किया। लॉर्ड रिपन के शासन काल में सर्वप्रथम स्थानीय स्वशासी संस्थाओं को नई चेतना प्राप्त हुई। किंतु लॉर्ड रिपन के उत्तराधिकारियों ने उसकी योजना को ठंडे बस्ते में डाल दिया। जब 1919 में द्वैध शासन व्यवस्था प्रारंभ हुई और स्थानीय स्वशासन एक हस्तांतरित विषय बना दिया गया तो अनेक भारतीय प्रांतों में ग्राम पंचायत अधिनियम पारित किए गए तथा ग्राम पंचायतों की स्थापना तथा उनके कार्यों का एक नया युग आरंभ हुआ। किंतु धन की कमी के कारण ग्राम पंचायतें अपने पूर्णरूप में फल-फूल न सकीं। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के लागू होने के उपरांत, जब पूर्ण प्रांतीय स्वायत्तता स्थापित हुई तो ग्राम पंचायतों को पुनः एक नई चेतना प्राप्त हुई। द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ होते ही उत्तरदायी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिए। परिणाम स्वरूप ग्राम पंचायतों को पुनः एक धक्का लगा। युद्ध की समाप्ति के उपरांत, 1946 में प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव हुए तथा उत्तरदायी सरकारें

सत्तारूढ हुई, तो ग्राम पंचायतों का पुनः एक नया युग आरंभ हुआ।

1947 में जब भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तब कई प्रांतों ने नवीन ग्राम पंचायत अधिनियम पारित किए जिनमें ग्राम पंचायतों को स्वशासन की एक इकाई के रूप में विकसित करने के प्रयत्न किए गए। राज्यों के स्थानीय स्वशासन विभाग के मंत्रियों के एक सम्मेलन द्वारा 1947 का संयुक्त प्रांतीय ग्राम पंचायत अधिनियम एक आदर्श अधिनियम माना गया तथा अन्य राज्यों से अनुरोध किया गया कि वे उसी के अनुरूप अपने अधिनियमों को पुनर्रचित करें। इसी बीच, 1952 में सामुदायिक विकास योजना तथा 1953 में राष्ट्रीय विस्तार सेवा योजना देश में प्रारंभ की गई। इन दोनों योजनाओं का उद्देश्य ग्रामों में सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान करना था। किंतु इन योजनाओं को आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा लगा कि नौकरशाही जनता का सहयोग प्राप्त करने में समर्थ नहीं रही। परिणाम-स्वरूप 1957 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह सामुदायिक विकास योजना तथा राष्ट्रीय विस्तार सेवा के कार्यों की जाँच पड़ताल करे तथा ऐसी संस्थाओं की स्थापना के संबंध में सुझाव दे कि जिनसे गाँवों की जनता का सहयोग प्राप्त करने में सफलता मिल सके। समिति ने 24 नवंबर 1957 को राष्ट्रीय विकास परिषद् को अपनी रिपोर्ट सौंपी। समिति की मुख्य संस्तुतियाँ इस प्रकार थीं : एक त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था स्थापित की जाए, इसमें जिला स्तर पर जिला परिषद्, खंड स्तर पर पंचायत समिति तथा ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत की कल्पना की गई, इन संस्थाओं को सत्ता का वास्तविक हस्तांतरण होना चाहिए, उन्हें पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए तथा विकास की समस्त योजनाओं को इन्हीं संस्थाओं के माध्यम से आगे बढ़ाया जाना चाहिए।

इस समिति की संस्तुतियाँ, पंचायतीराज व्यवस्था, त्रि-स्तरीय व्यवस्था, विकेंद्रीकरण योजना इत्यादि को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इन संस्तुतियों का केंद्रीय तथा राज्य सरकारों ने स्वागत किया तथा उन्हें कार्यान्वित करने के लिए अधिनियम बनाने के कदम उठाए गए। तदनुसार अधिकांश राज्यों ने त्रि-स्तरीय पंचायती राज संस्थाएँ स्थापित की, किंतु कुछ राज्यों में द्वि-स्तरीय संस्थाएँ ही स्थापित की गईं। प्रारंभ में इन संस्थाओं का उत्साह पूर्वक स्वागत किया गया किंतु 1960 के दशक के मध्यकाल के आते-आते इनके संबंध में उत्साह में कमी आने लगी। इसके मुख्य कारण थे : केंद्रीकरण की ओर बढ़ती प्रवृत्तियाँ, संसाधनों की कमी, भ्रष्टाचार, अकुशलता तथा बार-बार इन संस्थाओं के चुनावों का स्थगित किया जाना। परिणामस्वरूप 1977 में जनता सरकार ने पंचायती राज संस्थाओं को पुनर्जीवित करने की संभावनाओं का पता लगाने तथा उनको दृढ़ता प्रदान करने हेतु उपयुक्त सुझाव देने के लिए अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने 1978 में अपनी रिपोर्ट पेश की। इस समिति की मुख्य संस्तुतियाँ इस प्रकार थीं : द्विस्तरीय पंचायतीराज व्यवस्था की स्थापना, जिसमें जिला स्तर पर जिला परिषद् तथा इसके नीचे 15,000 से 20,000 तक की जनसंख्या वाले गाँवों के समूह के लिए मंडल पंचायत हो, न्याय पंचायत एक अलग संस्था हो जिसकी अध्यक्षता एक योग्य न्यायाधीश करे, पंचायतीराज

संस्थाओं के निर्वाचन में राजनैतिक दलों की खुली सहभागिता हो, इन संस्थाओं के निर्वाचन की व्यवस्था, मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सलाह से, राज्य का मुख्य निर्वाचन अधिकारी, जिला स्तर पर योजना के लिए जिला परिषद् को उत्तरदायी बनाया जाए, इन संस्थाओं की राज्य निधि पर निर्भरता में कमी की जाए तथा इन्हें करारोपण के अधिकार प्रदान किए जाएँ तथा विकास कार्य जिला परिषद् को हस्तांतरित किए जाएँ। 1980 में जनता सरकार के पतन के कारण अशोक मेहता समिति की रिपोर्ट को कार्यान्वित नहीं किया जा सका।

1984 में सी.एच.हनुमंत राव की अध्यक्षता में जिला योजना के संबंध में एक कार्यकारी समूह की स्थापना की गई। इस समूह ने यह संस्तुति की कि किसी मंत्री अथवा क्लेक्टर के अंतर्गत अलग से एक जिला योजना संस्था बनाई जाए। विकेंद्रित योजना में कलेक्टर की महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। इस प्रक्रिया में पंचायती राज संस्था का भी सहयोग लेना चाहिए।

1992 में, 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया जिसमें पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना अधिकारों तथा कार्यों के संबंध में वैधानिक प्रावधान किए गए। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधानों को हम दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं : अनिवार्य कार्यों से संबद्ध प्रावधान तथा ऐच्छिक कार्यों से संबद्ध प्रावधान।

अनिवार्य कार्यों से संबद्ध कुछ प्रावधान इस प्रकार हैं : जिला, खंड तथा गाँव स्तर पर त्रि-स्तरीय पंचायती राज संस्थाओं का गठन, सभी स्तरों पर, सभी पदों का निर्वाचन प्रत्यक्ष प्रणाली द्वारा किया जाए। पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन में निर्वाचित होने के लिए न्यूनतम आयु 21 वर्ष रखी जाए, जिला और खंड स्तरों पर सभापति के निर्वाचन परोक्ष रूप से किए जाएँ, पंचायतों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित रखे जाएँ, पंचायतों में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित रखे जाएँ, पंचायतीराज संस्थाओं के निर्वाचन के संचालन के लिए प्रत्येक राज्य में एक राज्य निर्वाचन आयोग होना चाहिए, पचायती राज संस्थाओं का कार्यकाल 5 वर्ष होना चाहिए, किंतु इससे पूर्व इन्हें विघटित कर दिया जाए तो 6 महीनों के भीतर नए निर्वाचन किए जाएँ, प्रत्येक राज्य में प्रति 5 वर्ष एक राज्य वित्त आयोग स्थापित किया जाए।

ऐच्छिक कार्यों से संबद्ध कुछ प्रावधान इस प्रकार हैं : इन संस्थाओं में संसद तथा राज्य विधान मंडलों के सदस्यों को मताधिकार प्रदान करना, पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण की व्यवस्था करना, पंचायतीराज संस्थाओं को कर शुल्क, पथ-कर और फीस इत्यादि लगाने से संबद्ध वित्तीय अधिकार देने तथा पंचायतों को स्वशासी संस्थाएँ बनाने के लिए प्रयत्न करने।

**गाँवों की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं की संरचना** संविधान का संशोधित स्वरूप गाँव, खंड तथा जिला स्तर पर पंचायतों की स्थापना की व्यवस्था करता है। किंतु जिस राज्य की जनसंख्या बीस लाख से अधिक न हो, वहाँ खंड स्तर पर पंचायतों का गठन आवश्यक नहीं है।

*पंचायतों का संगठन :* राज्य का विधान मंडल पंचायतों के गठन से संबंधित व्यवस्था करता है। पंचायत में सभी स्थान क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने चाहिए । खंड और जिला स्तर की

पंचायतों में ग्राम पंचायतों के अध्यक्षों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई है। उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य सभा, लोक सभा तथा विधान सभा के सदस्य भी खंड पंचायत तथा जिला पंचायत के सदस्य होते हैं। प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन जातियों के लिए स्थान आरक्षित रखे जाने चाहिए। इन आरक्षित स्थानों में एक तिहाई स्थान, इन समुदायों से संबद्ध महिलाओं के लिए आरक्षित रखे जाने चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक पंचायत में कुल सदस्यों की संख्या का एक तिहाई भाग महिलाओं के लिए आरक्षित रखा जाना चाहिए। इन एक तिहाई आरक्षित स्थानों में वे स्थान भी सम्मिलित हैं जो अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों से संबद्ध महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। पंचायत में निर्वाचित होने के लिए न्यूनतम आयु 21 वर्ष निर्धारित की गई है।

प्रत्येक पंचायत का कार्यकाल पाँच वर्ष होना चाहिए। वें इससे पूर्व भी विघटित की जा सकती हैं किंतु उनका निर्वाचन 6 महीनों के भीतर हो जाना चाहिए। पंचायत का कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व ही नवीन पंचायत का निर्वाचन हो जाना चाहिए।

राज्य का विधान मंडल पंचायतीराज संस्थाओं के अधिकारों और सत्ता में वृद्धि कर सकता है। किसी भी पंचायत को आवश्यकतानुसार कर, शुल्क, पथ-कर और फीस लागू करने, उन्हें उगाहने तथा उनका विनियोग करने का अधिकार है। उसे राज्य सरकार द्वारा लागू किए गए तथा उगाहे गए कर, शुल्क, पथ-कर और फीस में भी हिस्सा दिया जा सकता है। राज्य उसे सहायता अनुदान देने की भी व्यवस्था करता है। प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् एक वित्त आयोग गठित किया जाता है जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और इनकी उन्नति के लिए किए जाने वाले उपायों के संबंध में राज्यपाल को संस्तुति करता है।

राज्य का निर्वाचन आयोग पंचायतों के समस्त निर्वाचनों का संचालन, अधीक्षण, निर्देशन तथा नियंत्रण करता है। राज्य के निर्वाचन आयुक्त की नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा होती है तथा उसे उसी प्रकार और उन्हीं कारणों से अपदस्थ किया जा सकता है जिस प्रकार उच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अपदस्थ किया जाता है।

### गाँवों के स्थानीय शासन के कार्य

पंचायती राज संस्थाओं के प्रारंभ के पश्चात् तथा 1992 के 73वें संविधान संशोधन के लागू होने के उपरांत यह आशा की जाती थी कि ग्रामीण भारत में स्थानीय स्वशासी संस्थाएँ सुचारुतापूर्वक कार्य सम्पन्न कर सकेंगी किंतु दुर्भाग्यवश यह केवल एक स्वप्न ही रह गया। जातिगत झगड़े, समूहगत संघर्ष, चुनावी हिंसा, अपराधियों की सहभागिता, राजनैतिक इच्छा शक्ति की कमी, सरपंच द्वारा पंचायती धन का दुरुपयोग तथा नौकरशाही का असहयोगात्मक रुख, ऐसे कुछ कारण हैं जिन्होंने पंचायतीराज संस्थाओं के कार्यों को पटरी पर से उतार दिया।

## अभ्यास

1. भारत में नगरीय स्वशासी संस्थाओं के गठन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. नगरीय स्वशासी संस्थाओं की आय के विभिन्न स्रोत क्या हैं?
3. क्या आप इस विचार से सहमत हैं कि भारत के नगरों में लोकतंत्र की जड़ें ठीक से नहीं जमी हैं? इसके क्या कारण हैं?
4. पंचायतीराज संस्थाओं के तीन स्तर कौन से हैं?
5. पंचायतों के संगठन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
6. पंचायतीराज संस्थाओं के निर्वाचनों का संचालन करने वाली व्यवस्था का संक्षेप में विवरण दीजिए।
7. राज्य के वित्त आयोग का गठन कैसे होता है? यह क्या कार्य करता है?
8. निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए।
   क. जिला योजना समिति।
   ख. महानगरीय योजना।
   ग. नगर पंचायत ।

अध्याय 8

# भारतीय प्रशासन संगठन एवं कार्य

## केंद्रीय प्रशासन : संगठन एवं कार्य

भारतीय संविधान सार्वजनिक कार्यों के प्रशासन से संबंधित किसी तंत्र की कोई व्यवस्था नहीं करता। संविधान के अनुच्छेद 77(1) में कहा गया है कि भारत सरकार के सभी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किए जाएँगे किंतु अनुच्छेद 77(3) में कहा गया है कि भारत सरकार के कार्यों को संपादित करने के लिए राष्ट्रपति नियम बनाएगा। मंत्रालय तथा विभागों का सामूहिक नाम सचिवालय है। सचिवालय को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है : केंद्रीय सचिवालय और केबिनेट सचिवालय। केंद्रीय सचिवालय प्रशासन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है जब कि केबिनेट सचिवालय, केबिनेट के कार्यों के प्रशासन से संबंध रखता है।

मंत्रालय तथा विभागों की संख्या, काम के बोझ, काम की प्राथमिकता तथा राजनैतिक औचित्य की आवश्यकता के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। किसी मंत्रालय में एक या एक से अधिक विभाग हो सकते है या ऐसा भी संभव है कि उसमें कोई भी अलग विभाग न हो। मंत्रालय का अध्यक्ष एक मंत्री होता है, जिसके सहायक, सचिव, अतिरिक्त सचिव, संयुक्त सचिव, निदेशक, उपसचिव, अवर सचिव तथा अनुभाग अधिकारी जैसे सरकारी कर्मचारी होते हैं। आंतरिक संगठन की दृष्टि से काम को शीघ्रता पूर्वक निपटाने के लिए मंत्रालय को विभिन्न भागों (segments) में विभक्त किया जाता है और प्रत्येक भाग किसी अधिकारी के अंतर्गत कार्य करता है।

किसी भाग का सबसे नीचे का खंड एक अनुभाग (section) होता है, जो किसी अनुभाग अधिकारी के अंतर्गत कार्य करता है और उसकी सहायता के लिए कुछ सहायक, क्लर्क, दफ्तरी, टाइपिस्ट तथा चपरासी होते हैं। अनुभाग उन कार्यों को करता है जो उसे दिए जाते हैं। इसे कार्यालय के नाम से भी संबोधित किया जाता है। दो अनुभागों को मिलाकर एक शाखा (branch) बनती है जो अवर सचिव (under secretary) के अंतर्गत कार्य करती है जिसे शाखा अधिकारी के नाम से भी जाना जाता है। साधारणतया दो शाखाओं को मिलाकर एक प्रभाग (division) बनता है जिसका अध्यक्ष साधारणतया एक उप सचिव होता है। जब किसी मंत्रालय का कार्य बहुत अधिक बढ़ जाता है तो उसमें एक या अधिक खंड (wing) स्थापित किए जाते हैं जो एक संयुक्त सचिव के अंतर्गत कार्य करते हैं।

उपर्युक्त समस्त अधिकारी निम्नानुसार कार्य करते हैं:

### सचिव

सचिव किसी मंत्रालय अथवा विभाग का प्रशासकीय अध्यक्ष होता है। वह नीति से संबद्ध सभी विषयों पर मंत्री को सलाह देता है तथा प्रशासन की कुशलता के लिए उत्तरदायी होता है। वह संसद की लोक लेखा समिति के सम्मुख अपने मंत्रालय अथवा विभाग का प्रतिनिधित्व करता है। वह विभाग से साप्ताहिक रिपोर्ट

प्राप्त करता है। इधर कुछ वर्षों से प्रशासकीय संरचना में एक नई प्रवृत्ति उभरी है। कुछ मंत्रालय में विशेष सचिव नामक एक नए पद की सृष्टि की गई जो कुछ विशिष्ट कार्य संपादित करता है।

### अतिरिक्त सचिव

प्रारंभ में पद-सोपान की दृष्टि से सचिव के उपरांत उप सचिव का नाम आता था। किंतु या तो सचिव पर काम के दबाव के कारण या किसी वरिष्ठ संयुक्त सचिव को पुरस्कृत करने के लिए, उसके वेतन तथा उसके पद को उन्नत कर, उसे अतिरिक्त सचिव बना दिया जाता है।

### संयुक्त सचिव

इस पद की सृष्टि तीन कारणों से की गई : कुछ विभागों में काम इतना अधिक बढ़ गया कि सचिव के लिए उसको संपादित करना कठिन था, एक सचिव के अंतर्गत अलग-अलग प्रकार के कामों को एक साथ रखना आसान नहीं था, केंद्रीय विधान मंडल के द्वि सदनीय बन जाने के उपरांत, दोनों सदनों के विधायी कार्यों में सदस्यों की सहायता के लिए वरिष्ठ अधिकारियों की उपस्थिति आवश्यक हो गई।

### उपसचिव

उपसचिव एक ऐसा अधिकारी है जो सचिव की ओर से काम करता है तथा जो एक प्रभाग का प्रभारी होता है। उसके पास जो मामले आते है उनमें से अधिकांश को वह स्वयं निपटा देता है।

### अवर सचिव

अवर सचिव एक शाखा का चार्ज सँभालता है तथा वह काम को आगे बढ़ाने तथा अनुशासन बनाए रखने, दोनों पर नियंत्रण रखता है।

### अनुभाग अधिकारी

अनुभाग के प्रभारी को अनुभाग अधिकारी के नाम से संबोधित किया जाता है। उसके निर्देशन के अंतर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं : अनुभाग के कर्मचारियों में कार्यों का वितरण करना उन्हें प्रशिक्षण देना, परामर्श देना तथा उनकी सहायता करना, अनुभाग के काम को शीघ्रता तथा कुशलता पूर्वक संपादित करवाना, जो मामले अनुभाग के सामने आएँ उनको निपटाने के लिए उचित उपायों का अवलंबन करना तथा समय-समय पर बकाया राशि से संबद्ध विवरणों को यथा समय उच्चाधिकारियों के पास भेजना आदि।

प्रत्येक अनुभाग में अनुभाग अधिकारी के अतिरिक्त कई सहायक, प्रवर लिपिक, अवर लिपिक तथा टाइपिस्ट होते हैं। उनसे नियमित कार्य कराया जाता है तथा वे अनुभाग अधिकारी के सम्मुख संदर्भों सहित उचित कामकाज रखते हैं।

सचिवालय के अधिकांश पद भारतीय प्रशासकीय सेवाओं के अधिकारियों, प्रथम श्रेणी के केंद्रीय सेवाओं तथा केंद्रीय सचिवालयी सेवाओं से पदोन्नत अधिकारियों द्वारा भरे जाते हैं। इस प्रकार, संघीय सरकार अधिकांश में उन अधिकारियों पर निर्भर रहती है जो एक निश्चित अवधि के लिए डेपुटेशन पर आते हैं। किंतु इसमें कुछ अपवाद भी हैं। उदाहरणार्थ, विदेश मंत्रालय में सचिवालय के सभी पद भारतीय विदेश सेवा से भरे जाते हैं। इसी प्रकार, रेलवे मंत्रालय तथा केंद्रीय विधि सेवा विभागों में सभी अधिकारी क्रमशः रेलवे सेवाओं तथा केंद्रीय विधि सेवाओं से लिए जाते हैं।

### केंद्रीय सचिवालय के कार्य

केंद्रीय सचिवालय के मुख्य कार्य निम्नानुसार हैं : नीति निर्धारण प्रक्रिया में मंत्री की सहायता करना, विधियों, नियमों और विनियमों के बनाने में सहायता करना, नीतियों और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए कार्यकारी विभागों अथवा अर्ध स्वायत्तशासी क्षेत्रीय अभिकरणों पर अधीक्षण तथा नियंत्रण करना,

मंत्री को उसके संसदीय उत्तरदायित्वों के निर्वाह में सहायता देना और बजट को तैयार करने तथा मंत्रालय अथवा विभाग के द्वारा किए जाने वाले खर्चों के नियंत्रण में सहायता करना।

**केबिनेट सचिवालय**

केबिनेट सचिवालय का उद्गम ब्रिटिश शासन काल में हुआ। जब भारत सरकार के काम में वृद्धि हुई तो गवर्नर जनरल ने विभिन्न विभागों के कार्य को कार्यकारिणी परिषद् के विभिन्न सदस्यों में बाँट दिया तथा केवल कुछ कार्यों को ही अपने पास रखा। इन कार्यों को करने में उसकी सहायता एक निजी सचिव करता था। प्रारंभ में यह निजी सचिव कार्यकारिणी परिषद् की बैठकों में गवर्नर जनरल के साथ नहीं जाता था। किंतु लॉर्ड वेलिंग्टन के कार्यकाल में उसे गवर्नर जनरल के साथ कार्यकारिणी परिषद् की बैठकों मे ले जाया जाने लगा। कालांतर में, 1935 में उसे कार्यकारिणी परिषद् के सचिव का पद प्रदान कर दिया गया। उसे दो प्रकार के कार्य करने पड़ते थे : गवर्नर जनरल के निजी सचिव के रूप में तथा कार्यकारिणी परिषद् के सचिव के रूप में । कुछ समय के बाद इन दोनों कार्यों का पृथक्करण कर दिया गया तथा ये कार्य दो अलग-अलग पदाधिकारियों को सौंपे गए। इस प्रकार कार्यकारिणी परिषद् के सचिव का पद अस्तित्व में आया। कालांतर में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो इस पद को केबिनेट सचिव का नाम दिया गया तथा इससे संबद्ध कार्यालय को केबिनेट सचिवालय के नाम से पुकारा जाने लगा।

केबिनेट की कुशलता बहुत कुछ केबिनेट सचिवालय के काम पर निर्भर करती है। केबिनेट सचिवालय केबिनेट की बैठकों का कार्यक्रम तैयार करता इसके विचार विमर्श के लिए आवश्यक सूचना की व्यवस्था करता, तथा केबिनेट एवं उसकी समितियों के विचार विमर्श और निर्णयों का लेखा-जोखा रखता है। यह राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, तथा समस्त मंत्रालयों को शासन की महत्त्वपूर्ण गतिविधियों के संबंध में सूचनाएँ देता है। इसके तीन पक्ष : नागरिक पक्ष, सैनिक पक्ष, तथा गुप्तचर पक्ष है। नागरिक पक्ष, केबिनेट तथा उसकी विभिन्न समितियों के लिए सचिवालयी व्यवस्था सुलभ कराता है। इसका सैनिक पक्ष प्रतिरक्षा समिति, राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद्, सैनिक क्रियाकलाप समिति तथा प्रतिरक्षा विषय से संबद्ध अन्य समितियों की बैठकों के संबंध में सचिवालयी सहायता उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी है। इसका गुप्तचर पक्ष केबिनेट की संयुक्त गुप्तचर समिति से संबद्ध विषयों की देख-रेख करता है।

केबिनेट सचिवालय का अध्यक्ष केबिनेट सचिव होता है। यह देश की सिविल सेवा का वरिष्ठतम सेवक होता है तथा सिविल सेवकों में इसे प्राथमिकता प्राप्त रहती है।

केबिनेट सचिव की भूमिका के संदर्भ में एस. एस. खेरा ने सच ही कहा है कि केंद्रीय सरकार के आधिकारिक कामों के संदर्भ में वह प्रधानमंत्री की आँख और कान का काम करता है।

**सार्वजनिक उद्यम**

स्वतंत्र भारत में प्रशासन की एक मुख्य विशेषता यह है कि आर्थिक क्षेत्र में सरकार का हस्तेक्षप दिन प्रति दिन बढ़ रहा है। इस हस्तक्षेप के तीन स्वरूप हैं : नियोजित अर्थ व्यवस्था का आरंभ, सार्वजनिक वित्त की व्यवस्था अपने अनुकूल करना तथा सार्वजनिक उद्यमों का प्रशासन। सार्वजानिक उद्योगों तथा सार्वजनिक उपयोगिता से संबद्ध सेवाओं का स्वामित्व, संचालन तथा विनियम, आजकल सरकारी हस्तक्षेप

के महत्त्वपूर्ण साधन बन गए हैं और इन्होंने विचित्र तथा सुविस्तारित स्वरूप ग्रहण कर लिया है। सार्वजनिक उद्योग तीन स्वरूपों : विभागीय उद्यम, सरकारी कंपनियाँ तथा सार्वजनिक निगम में गठित किए जाते हैं।

**सार्वजनिक निगम :** यह शासन द्वारा रचित एक वैधानिक संस्था है। किंतु यह शासकीय संगठन से परे होने के कारण वित्तीय विषयों में शासन के नियमों, प्रतिबंधों आदि से मुक्त है। इसमें सार्वजनिक हित के लिए सार्वजनिक स्वामित्व, सार्वजनिक उत्तरदायित्व तथा व्यावसायिक प्रबंध, तीनों का संगम किया गया है। कुछ महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक निगम ये है : *दामोदार घाटी निगम, भारतीय वायुयान निगम, हवाई भारत, जीवन बीमा निगम, भारतीय खाद्य निगम तथा औद्योगिक वित्त निगम।*

सार्वजनिक निगमों का स्वामित्व राज्य के पास है तथा इनकी स्थापना विधि के द्वारा होती है, जिसमें इसके उद्देश्यों, शक्तियों, कर्त्तव्यों तथा विशेषाधिकारों को परिभाषित किया जाता है तथा प्रबंध के प्रारूप एवं शासकीय विभागों से इसके संबंधों को निर्धारित किया जाता है। साधारणतया इन्हें वित्त स्वतंत्र रूप से प्राप्त होता है। इन्हें या तो सरकार से या कुछ अवस्थाओं में, सर्वसाधारण जनता से ऋण प्राप्त होता है। इन्हें वस्तुओं एवं सेवाओं के विक्रय से राजस्व की प्राप्ति होती है। सार्वजनिक निगमों के कर्मचारी सरकारी सेवक नहीं होते किंतु सरकारी विभागों से उन्हें डेपुटेशन पर लिया जा सकता है।

**संविधान/विधान सम्मत संस्थाएँ**

सार्वजनिक क्रियाकलापों के प्रशासन में शासन के विभिन्न स्तरों पर मंत्रालयों तथा विभागों के साथ-साथ संविधान सम्मत संस्थाओं का भी वृहत् उपयोग हुआ है। शासन के कार्यपालिका कार्य निर्भयता पूर्वक तथा बिना किसी दबाव के, संपन्न किए जा सकें, अतः संविधान निर्माताओं ने निम्नलिखित संविधान/विधान सम्मत संस्थाओं की स्थापना की व्यवस्था की है :

*संघीय लोक सेवा आयोग*

संविधान निर्माताओं ने केंद्रीय सरकार के लिए यह आवश्यक कर दिया कि वह केंद्रीय तथा अखिल भारतीय सेवाओं की नियुक्ति, पदोन्नति, तथ उनमें अनुशासन बनाए रखने के लिए लोक सेवा आयोग गठित करे। संविधान में आयोग के सदस्यों की कोई निश्चित संख्या निर्धारित नहीं की गई। राष्ट्रपति को संख्या निर्धारित करने के लिए अधिकृत कर दिया गया।

केंद्रीय मंत्रिपरिषद् की सलाह से राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति करता है। संविधान में व्यवस्था है कि यथा संभव आधे सदस्य वे होने चाहिए जिन्होंने भारत सरकार के अधीन कम से कम 10 वर्षों तक कोई पद धारण किया है। संघीय लोक सेवा आयोग का प्रत्येक सदस्य पद ग्रहण करने के दिन से 6 वर्षों तक अथवा 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, इनमें जो भी पहले हो, पदारूढ़ रहता है। आयोग का कोई भी सदस्य राष्ट्रपति को संबोधित कर अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है।

आयोग के अध्यक्ष अथवा किसी भी सदस्य को राष्ट्रपति कदाचार के आधार पर अपदस्थ कर सकता है, यदि राष्ट्रपति द्वारा उसका मामला उच्चतम न्यायालय के पास भेजा गया हो और निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार जाँच करने के बाद उच्चतम न्यायालय इस परिणाम पर पहुँचा हो कि आयोग का वह सदस्य या अध्यक्ष अपदस्थ करने योग्य है।

लोकसभा आयोग के अध्यक्ष अथवा किसी अन्य सदस्य को राष्ट्रपति द्वारा निम्नलिखित किसी कारण के आधार पर भी अपदस्थ किया जा सकता है : यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया हो या अपने कार्यकाल में कोई अन्य वैतनिक कार्य करता हो या राष्ट्रपति की सम्मति में वह व्यक्ति मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण अपने पद पर कार्य करने में असमर्थ हो गया हो।

*आयोग के कार्य*

आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह भारत सरकार की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करे। जब कभी असैनिक सेवाओं में कोई नियुक्ति करनी हो तो नियुक्ति की प्रक्रिया से संबद्ध समस्त विषयों में तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानांतरण के संबंध में तथा ऐसी नियुक्तियों, पदोन्नतियों अथवा स्थानांतरणों के लिए अभ्यर्थियों की योग्यता संबंधी सभी विषयों में लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया जाएगा। आयोग से उस समय भी परामर्श लिया जाएगा जब कभी किसी व्यक्ति को भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन कार्य करते समय कोई चोट लगी हो तथा वह व्यक्ति क्षति-पूर्ति का दावा करे। क्षतिपूर्ति की रकम निर्धारित करते समय भी आयोग से परामर्श लिया जाएगा। भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कार्यरत व्यक्तियों के अनुशासन से संबद्ध सभी विषयों में भी आयोग से परामर्श लिया जाएगा। आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि वह अपने कार्यों के संबंध में राष्ट्रपति के सम्मुख वार्षिक प्रतिवेदन रखे। राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक है कि वह उस प्रतिवेदन को संसद के दोनों सदनों के सम्मुख रखे।

*निर्वाचन आयोग*

निर्वाचनों को स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से संचालित करने के लिए संविधान में एक निर्वाचन आयोग की व्यवस्था की गई है। इस आयोग में मुख्य निर्वाचन आयुक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य सदस्य होते हैं, जिनकी संख्या राष्ट्रपति समय-समय पर निर्धारित करता है। ये सभी राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। यदि निर्वाचन आयोग में मुख्य आयुक्त के अतिरिक्त अन्य आयुक्त नियुक्त किए जाते हैं तो मुख्य आयुक्त आयोग के अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है।

कार्यों को संपन्न करने में सहायता देने के लिए, राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग के परामर्श से कुछ क्षेत्रीय आयुक्त भी, जिन्हें वह उचित समझे, नियुक्त कर सकता है।

मुख्य निर्वाचन आयुक्त को उसी प्रकार और उन्हीं आधारों पर अपदस्थ किया जा सकता है जिस प्रकार और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय का कोई भी न्यायाधीश अपदस्थ किया जा सकता है। नियुक्ति के उपरांत मुख्य निर्वाचन आयुक्त की सेवा शर्तों में ऐसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता जो उसके लिए हानिप्रद हो। मुख्य आयुक्त की संस्तुति के बिना किसी भी अन्य निर्वाचन आयुक्त अथवा क्षेत्रीय आयुक्त को अपदस्थ नहीं किया जा सकता।

*आयोग के अधिकार एवं कार्य*

आयोग के अधिकारों एवं कार्यों का निर्धारण न केवल संविधान द्वारा वरन् संसद के अधिनियमों द्वारा भी, होता है। आयोग के मुख्य अधिकार और कार्य इस प्रकार हैं : निर्वाचक सूची का अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण, संसद तथा राज्य विधान सभाओं के निर्वाचन/ उप निर्वाचन का संचालन, राष्ट्रपति एवं

उप राष्ट्रपति का निर्वाचन, निर्वाचनों की वैधता को चुनौती देने वाली चुनाव याचिकाओं को ग्रहण करना तथा उनकी जाँच के लिए अधिकरणों की नियुक्ति करना, अभ्यर्थियों द्वारा दिए गए निर्वाचन खर्चों के ब्यौरों की जाँच करना, नियोग्यताओं को हटाने से संबंधित प्रार्थना पत्रों को ग्रहण करना, राजनैतिक दलों को मान्यता देना तथा यह निश्चित करना कि उन्हें राष्ट्रीय दल माना जाए अथवा क्षेत्रीय दल की मान्यता दी जाए तथा राजनैतिक दलों को चुनाव चिह्न देना अथवा उनसे चुनाव चिह्नों को वापस लेना आदि।

*वित्त अयोग*

संविधान में एक वित्त अयोग की व्यवस्था है, जिसमें एक सभापति तथा 4 अन्य सदस्य होते हैं। इन सब की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। आयोग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होता है जिसे सार्वजनिक कार्यों का अनुभव हो। अन्य 4 सदस्य उन व्यक्तियों में से चुने जाते हैं जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बनने की क्षमता रखते हों, सरकार के लेखाओं तथा वित्त की विशेष जानकारी रखते हों, जिन्हें वित्तीय विषयों और प्रशासन का विस्तृत अनुभव हो तथा जिन्हें अर्थशास्त्र का विशेष ज्ञान हो।

आयोग का प्रत्येक सदस्य उस अवधि तक अपने पद पर आरूढ़ रहता है जितनी अवधि उसके नियुक्ति पत्र में राष्ट्रपति द्वारा उल्लिखित हो। उसकी पुनर्नियुक्ति हो सकती है। आयोग के सदस्य पूर्णकाल तक अथवा आंशिक काल तक, जैसा भी राष्ट्रपति निश्चित करे कार्यरत रहते हैं। आयोग को यह अधिकार है कि वह किसी भी व्यक्ति से किसी भी प्रश्न पर कोई भी सूचना, जिसे आयोग उपयोगी समझे, प्राप्त कर सके।

*आयोग के कार्य*

आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह राष्ट्रपति को निम्न विषयों पर अपनी संस्तुतियाँ दे : कर द्वारा प्राप्त आय का बँटवारा अथवा वितरण, भारत की संचित निधि में राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुदानों के सिद्धांतों का निर्धारण तथा राष्ट्रपति द्वारा स्वस्थ वित्तीय हितों के संदर्भ में माँगे गए किसी भी विषय पर विचार। वित्त आयोग के द्वारा दी गई संस्तुतियों तथा उनके संबंध में किए गए कार्यों का लेखा-जोखा राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सम्मुख रखता है।

*भारत का महान्यायवादी*

राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को भारत का महान्यायवादी नियुक्त करता है जिसमें उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त होने की क्षमता हो। महान्यायवादी का यह कर्त्तव्य है कि वह भारत सरकार को ऐसे वैधानिक विषयों से संबंधित सलाह दे तथा वैधानिक स्वरूप के ऐसे कर्त्तव्यों का पालन करे जिन्हें समय-समय पर राष्ट्रपति उसके सम्मुख रखे। वह संविधान द्वारा अथवा संविधान के अंतर्गत दिए गए अन्य कार्यों को भी संपादित करता है।

अपने कर्त्तव्यों का पालन करते समय महान्यायवादी को यह अधिकार है कि भारत के सभी न्यायालयों में उसकी बात सुनी जाए। उसे संसद के किसी भी सदन अथवा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन अथवा संसद की किसी भी समिति में बोलने तथा उसमें भाग लेने का अधिकार है किंतु उसे मतदान करने का अधिकार प्राप्त नहीं है।

*भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक*

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के द्वारा भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति की व्यवस्था है। वह उसी प्रकार से तथा उन्हीं आधारों पर अपदस्थ किया जा सकता है जिस प्रकार से और जिन आधारों पर उच्चतम न्यायालय का कोई न्यायाधीश अपदस्थ किया जा सकता है। पद ग्रहंण करने से पूर्व उसे एक निर्धारित प्रारूप में शपथ लेनी पड़ती है। अवकाश ग्रहण करने के उपरांत वह न तो भारत सरकार और न राज्य सरकार के किसी पद पर नियुक्त किया जा सकता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यालय तथा उसमें कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों से संबद्ध सभी खर्चे, जिनमें वेतन, भृत्ते और पेंशन सम्मिलित है, भारत की संचित निधि से निकाले जाएँगे।

भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ तथा राज्यों के अथवा किसी अन्य अधिकारी के लेखाओं से संबद्ध ऐसे कर्त्तव्यों का पालन तथा ऐसे अधिकारों का उपयोग करता है जो संसद द्वारा निर्धारित किए जाएँ। संघ और राज्यों के लेखा उस रूप में रखे जाते हैं जिसका निर्धारण नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के परामर्श से राष्ट्रपति करता है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक संघ शासन के लेखा से संबद्ध प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है जो उसे संसद के दोनों सदनों के सम्मुख रखता है।

उपर्युक्त संविधान एवं विधान सम्मत संस्थाओं के अतिरिक्त संविधान कुछ और अन्य संस्थाओं की भी व्यवस्था करता है, जैसे, राज भाषा से संबद्ध संसद की समिति एवं आयोग, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों से संबद्ध राष्ट्रीय आयोग, अल्प संख्यक आयोग इत्यादि। ये समस्त संस्थाएँ हमारी राजनैतिक व्यवस्था के सम्मुख जो चुनौतियाँ हैं, उनका समाधान ढूँढ़ती हैं। ये विधि सम्मत संस्थाएँ नियमित बैठकें करती हैं तथा विभिन्न समस्याओं के समाधान में योगदान करती हैं। ये अपने कार्यों से संबद्ध प्रतिवेदन राष्ट्रपति के सम्मुख रखती हैं जिन्हें राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सम्मुख रखते हैं।

## राज्य प्रशासन : संगठन एवं कार्य

प्रशासकीय सुविधा की दृष्टि से राज्य शासन की प्रशासकीय संरचना को कई विभागों में विभक्त किया गया है। विभाग दो प्रकार के होते हैं : सचिवालयी विभाग एवं कार्यकारी विभाग। सचिवालयी विभाग की अध्यक्षता साधारणतया एक सचिव करता है, जिसकी योग्यताएँ सामान्य होती हैं, जब कि कार्यकारी विभाग की अध्यक्षता साधारणतया एक निदेशक करता है, जो एक विशेषज्ञ होता है। सचिवालयी विभाग मंत्री को नीति निर्माण, विधियों, नियमों एवं विनियमों के निर्माण तथा कार्यकारी विभागों के अधीक्षण तथा नियंत्रण, में सहायता करता है। यह मंत्री को उसके उत्तरदायित्वों को वहन करने तथा बजट बनाने में भी सहायता करता है।

***सचिवालयी विभागों के अधिकारी :*** सचिवालयी विभाग अनेक अधिकारियों का एक पद सोपान होता है, जिसके सर्वोच्च शिखर पर सचिव होता है तथा जिसके विस्तृत आधार पर कई क्लर्क काम करते हैं। पद सोपन में सचिव, उप सचिव, अवर सचिव तथा सहायक सचिव होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ सचिवालयी विभागों में विशेष सचिव, अतिरिक्त सचिव तथा संयुक्त

सचिव भी होते हैं। इन सब अधिकारियों के कार्य न्यूनाधिक वे ही होते हैं जिनकी विवेचना हमने केंद्रीय सचिवालय के संदर्भ में की है।

उपर्युक्त प्रशासकीय अधिकारियों के अतिरिक्त राज्यों में मुख्य सचिव नामक एक और अधिकारी पाया जाता है। मुख्य सचिव राज्य प्रशासन का मुख्य प्रशासकीय अध्यक्ष होता है। वह राज्य में कई दृष्टियों से संघ शासन के केबिनेट सचिव का प्रतिरूप होता है। उसकी नियुक्ति मुख्यमंत्री वरिष्ठ सचिवों में से करता है। उसका चयन करते समय वरिष्ठता, सेवा रेकॉर्ड तथा मुख्यमंत्री की विश्वासपात्रता का मुख्य योगदान होता है। इन तीनों में से भी अंततोगत्वा मुख्यमंत्री की विश्वासपात्रता का ही मुख्य योगदान होता है।

मुख्य सचिव पद का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता। यह बहुत कुछ उसके प्रशासकीय चातुर्य, अनुभव, मुख्यमंत्री के साथ उसकी समरसता तथा अत्यधिक मात्रा तक नाजुक विषयों पर उसके वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण पर निर्भर है। जो सिविल सेवक गरिमा, निष्पक्षता तथा एक अधिक सीमा तक प्रच्छन्नता (anonymity) रखने में समर्थ हो वह किसी भी दल अथवा समूह मंत्री के साथ काम करने में समर्थ होगा।

*मुख्य सचिव की भूमिका और कार्य :* मुख्य सचिव केबिनेट सचिवालयी विभाग को नियंत्रित तथा उसका अधीक्षण करता है। उसके कार्य निम्नानुसार हैं :

1. वह पदेन (ex-officio) केबिनेट का सचिव होता है और केबिनेट तथा उसकी उपसमितियों की सभी बैठकों में उपस्थित रहता है। वह केबिनेट के निर्णयों का रेकॉर्ड रखता और उसकी एक एक प्रतिलिपि राज्यपाल, मुख्यमंत्री तथा मंत्रिपरिषद् के समस्त सदस्यों को भेजता है।
2. वह मुख्यमंत्री की सूचनाओं का मुख्य स्रोत होता है तथा उसे सलाह भी देता है।
3. वह केबिनेट के द्वारा लिए गए निर्णयों के कार्यान्वयन की देख-रेख भी करता है।
4. केंद्र में प्रचलित प्रथा के विपरीत, राज्य का मुख्यसचिव कुछ विभागों का अध्यक्ष भी होता है। साधारणतया वह सामान्य प्रशासन, कार्मिक प्रशासन, प्रशासकीय सुधार तथा योजना विभागों की अध्यक्षता करता है।
5. वह अंतर्राज्य विवादों की देख-रेख करता है।
6. वह राज्य शासन के समस्त विभागों और अभिकरणों (agencies) की गतिविधियों में समन्वय स्थापित करता, विवादों को निपटाता, शासन के विभिन्न विभागों में काम का समुचित बँटवारा करता तथा अपने सहयोगियों के बीच सहयोग एवं साथ-साथ काम करने की भावना को सुनिश्चित करता है।
7. वह केंद्र और राज्यों के बीच संचरण का मुख्य माध्यम है।

*कार्यकारी विभाग/डाइरेक्ट्रेट*

सचिवों के सहयोग से मंत्रालय जिन नीतियों को निर्धारित करता है, उनका कार्यान्वयन कार्यकारी विभागों द्वारा होता है, जिनकी अध्यक्षता डाइरेक्टर तथा डाइरेक्टर जनरल करता है। डाइरेक्टर सिविल सेवक भी हो सकता है और वह प्राविधिक (technical) विशेषज्ञ भी हो सकता है किंतु अधिकांश राज्यों में प्रथा यह है कि वे कार्यकारी विभाग के अध्यक्ष पद पर किसी प्राविधिक विशेषज्ञ को ही रखते हैं।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि कुछ विभागों में, जैसे सार्वजनिक निर्माण विभाग, वन विभाग तथा पुलिस विभाग में डाइरेक्टर नहीं होते हैं। उनके यहाँ प्राविधिक विशेषज्ञों को ही विभागाध्यक्ष के रूप में रखा जाता है। उदाहरणार्थ, सार्वजनिक निर्माण विभाग की अध्यक्षता मुख्य इंजीनियर, वन विभाग की अध्यक्षता मुख्य वन रक्षक तथा पुलिस विभाग की अध्यक्षता पुलिस का डाइरेक्टर जनरल करता है।

*राज्य सेवाएँ*

राज्य सेवाओं में उन समस्त सेवाओं की गणना की जाती है जिन्हें राज्य सरकार सरकारी गजट में प्रकाशित सूचना द्वारा इस वर्ग में रखती है। इन सेवाओं की संख्या अलग-अलग है। साधारणतया प्रत्येक राज्य में सिविल सेवा, चिकित्सा सेवा, पुलिस सेवा, न्यायिक सेवा, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा, वन सेवा, शिक्षा सेवा, पशु चिकित्सा सेवा, सहकारिता सेवा, इंजीनियरिंग सेवा, लेखा सेवा इत्यादि होती हैं। राज्य सेवाओं को मुख्यतः चार वर्गों : प्रथम वर्ग, द्वितीय वर्ग, तृतीय वर्ग और चतुर्थ वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है। प्रथम एवं द्वितीय वर्गों में अधिकारी वर्ग आते हैं। तृतीय वर्ग में लिपिकीय कर्मचारी आते हैं जब कि चतुर्थ वर्ग में अकुशल कर्मचारी आते हैं।

*राज्य लोक सेवा आयोग*

राज्य की सेवाओं में नियुक्ति, पदोन्नति एवं अनुशासन स्थापित रखने के लिए राज्य सरकार के द्वारा एक राज्य लोक सेवा आयोग की नियुक्ति आवश्यक है। संविधान में आयोग के सदस्यों की कोई संख्या निर्धारित नहीं की गई है। यह कार्य राज्यपाल पर छोड़ दिया गया है। संविधान, दो या दो से अधिक राज्यों के लिए एक संयुक्त लोक सेवा आयोग के गठन की अनुमति देता है। अगर इस प्रभाव का एक प्रस्ताव विधायिका द्वारा पारित किया जाए, तो संसद ऐसे संयुक्त लोक सेवा आयोग का गठन विधि द्वारा कर सकता है।

राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल करता है, किंतु संयुक्त लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है।

संविधान में व्यवस्था है कि यथा संभव आयोग के आधे सदस्य ऐसे होने चाहिए जिन्होंने कम से कम 10 वर्षों तक भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कोई पद धारण किया हो। जब कभी लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष का पद किसी भी कारण से रिक्त हो जाए तो संयुक्त लोक सेवा आयोग की स्थिति में राष्ट्रपति तथा राज्य लोक सेवा आयोग की स्थिति में राज्यपाल को यह अधिकार प्राप्त है कि वह आयोग के अन्य सदस्यों में से किसी एक को उस समय तक अध्यक्ष का कार्यभार ग्रहण करने के लिए नियुक्त कर दे जब तक कोई स्थायी नियुक्ति न हो जाए।

संयुक्त लोक सेवा आयोग अथवा राज्य लोक सेवा आयोग का प्रत्येक सदस्य, जिस दिन से वह पद ग्रहण करता है उस दिन से, 6 वर्षों तक अथवा 62 वर्ष की आयु प्राप्ति तक, जो भी पूर्व हो, अपने पद पर बना रह सकता है। संयुक्त लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य राष्ट्रपति को संबोधित कर तथा राज्य लोक सेवा आयोग का कोई सदस्य राज्यपाल को संबोधित कर, अपने पद से त्यागपत्र दे सकता है।

आयोग के अध्यक्ष अथवा सदस्य को राष्ट्रपति कदाचार के आधार पर पदमुक्त कर सकता है। राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष अथवा अन्य सदस्य को

निम्नलिखित किसी कारण के आधार पर भी अपदस्थ कर सकता है : यदि वह दिवालिया हो गया हो या अपने कार्यकाल में कोई अन्य वैतनिक कार्य स्वीकार कर लेता है या राष्ट्रपति की सम्मति में वह मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण अपने पद पर कार्य करने में असमर्थ हो गया हो।

राज्य लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष अपने पद से मुक्त होने के उपरांत संघीय लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष अथवा अन्य सदस्य के रूप में अथवा किसी अन्य राज्य के लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया जा सकता है। वह भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कोई भी अन्य पद ग्रहण नहीं कर सकता।

### आयोग के कार्य

आयोग का यह कर्त्तव्य होगा कि राज्य सरकार की सेवाओं में नियुक्ति के लिए परीक्षाओं का संचालन करे। जब कभी असैनिक सेवाओं में कोई नियुक्ति करनी हो तो नियुक्ति की प्रक्रिया से संबद्ध समस्त विषयों में, पदोन्नति में तथा एक सेवा से दूसरी सेवा में स्थानांतरण के संबंध में तथा ऐसी नियुक्तियों, पदोन्नतियों अथवा स्थानांतरणों के लिए अभ्यर्थियों की योग्यता संबंधी सभी विषयों में लोक सेवा आयोग से परामर्श लिया जाएगा। आयोग से उस समय भी परामर्श लिया जाएगा जब कभी किसी व्यक्ति को भारत सरकार अथवा किसी राज्य सरकार के अधीन कार्य करते समय कोई चोट लगी हो तथा वह व्यक्ति क्षति-पूर्ति का दावा करे। क्षति-पूर्ति की रकम निर्धारित करते समय भी आयोग से परामर्श लिया जाएगा। भारत सरकार अथवा राज्य सरकार के अधीन कार्यरत व्यक्तियों के अनुशासन से संबद्ध सभी विषयों में भी आयोग से परामर्श लिया जाएगा।

आयोग का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कार्यों के संबंध में राज्यपाल के सम्मुख वार्षिक प्रतिवेदन रखे। राज्यपाल के लिए यह आवश्यक है कि वह उस प्रतिवेदन को विधान मंडल के सम्मुख, अपने स्मरण पत्र के साथ, जिसमें उन प्रकरणों का उल्लेख हो जिनमें आयोग की संस्तुति न स्वीकार की गई हो तथा उन कारणों का भी उल्लेख हो जिनके आधार पर संस्तुति को अस्वीकार किया गया हो, रखे।

### राज्य का महाधिवक्ता

संविधान में एक महाधिवक्ता के पद की भी व्यवस्था की गई है। वह राज्यपाल के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर आरूढ़ रहता है किंतु यथार्थ में, वह उस मंत्रिपरिषद् की कार्यावधि तक पदासीन रहता है जिसने उसे नियुक्त किया। उसकी नियुक्ति के लिए यह योग्यता निर्धारित की गई है कि वह उच्च न्यायालय के न्यायाधीश पद पर नियुक्ति के योग्य हो।

यद्यपि वह राज्य विधान मंडल का सदस्य नहीं होता तथापि उसे विधान मंडल में विधि विषयक स्पष्टीकरण के लिए बुलाया जा सकता है। जब कभी ऐसा होता है तो उसे विधान मंडल में बोलने तथा उसकी कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होता है किंतु वह-उसमें मतदान नहीं कर सकता है।

वह उन सब कार्यों को करता है जो विधि द्वारा उसके लिए निर्धारित किए जाते हैं। वह राज्य सरकार का सर्वोच्च वैधानिक परामर्शदाता है तथा राज्य सरकार की ओर से सभी न्यायालयों में सरकारी पक्ष रखता है। उच्च न्यायालय के प्रारंभिक अधिकार क्षेत्र में आने वाले सभी अभियोगों में सरकार की ओर से वह अभियोग लगाता है। विभिन्न विभागों द्वारा विधेयकों

के जो प्रारूप तैयार किए जाते हैं वह उनका परीक्षण करता है।

### राज्य वित्त आयोग

1992 में पारित संविधान के 73वें तथा 74वें संशोधन अधिनियमों के द्वारा संविधान में क्रमशः भाग 9 और 10 जोड़े गए हैं जिनमें क्रमशः पंचायतों तथा नगर पालिकाओं के गठन और अधिकारों की व्यवस्था की गई है। इन संशोधनों के द्वारा प्रत्येक राज्य में एक वित्त आयोग के गठन और उसके अधिकारों की भी व्यवस्था की गई है।

राज्य का राज्यपाल प्रति 5वें वर्ष एक वित्त आयोग की नियुक्ति करेगा। राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा, उस आयोग के गठन, उसके सदस्यों की नियुक्ति के लिए आवश्यक योग्यताएँ तथा उनकी नियुक्ति की प्रक्रिया विषयक व्यवस्था करेगा।

आयोग को यह अधिकार है कि वह पंचायतों तथा नगर पालिकाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करे तथा राज्यपाल को निम्न विषयों पर अपनी संस्तुति प्रस्तुत करे : 1 वे सिद्धांत जिनके आधार पर राज्य द्वारा लगाए गए करों, शुल्कों, पथ-करों और फीस को राज्य और नगरीय संस्थाओं तथा राज्य और पंचायतों के बीच वितरित किया जाए, उन करों, शुल्कों, पथ-करों और फीस का निर्धारण किया जाए जिन्हें नगरीय संस्थाएँ तथा पंचायतें लगा सकें तथा विनियोजित कर सकें, राज्य निधि से नगरीय संस्थाएँ तथा पंचायतें सहायता अनुदान प्राप्त कर सकें, 2. इन संस्थाओं की वित्तीय स्थिति को सुधारने के उपाय बताएँ तथा 3. किसी अन्य विषय पर जिसे राज्यपाल ने पंचायतों/ नगर पालिकाओं के हित में आयोग को विचारार्थ भेजा हो।

आयोग की संस्तुतियों को, अपने इस स्पष्टीकरण के साथ कि उस पर क्या कार्यवाही की गई है, राज्यपाल विधान मंडल के सम्मुख रखेगा।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि राज्य का वास्तविक शासन सचिवालय तथा कार्यकारी विभागों द्वारा चलाया जाता है। शासन की नीतियों का निर्धारण सचिवालय के परामर्श से मंत्रियों द्वारा किया जाता है तथा उनका कार्यान्वयन कार्यकारी विभागों द्वारा किया जाता है।

## भारत में जिला प्रशासन

शासन के एक अंग के रूप में जिला प्रशासन प्राचीन काल से विद्यमान रहा है। मनु की रचनाओं में जिला प्रशासन का उल्लेख मिलता है। मनु के मतानुसार 1000 गाँवों को मिलाकार एक जिला बनता था जो एक अलग अधिकारी के अंतर्गत कार्य करता था, जिसे 'स्थानिक' के नाम से संबोधित किया जाता था। गुप्त और मौर्य शासकों के शासन काल में जिला स्तर पर प्रशासन का एक सुगठित स्वरूप मिलता है। मुगल शासकों के काल में भी जिला स्तर पर एक विशिष्ट संगठन विद्यमान था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी मामूली हेर-फेर के साथ मुग़लों का अनुकरण किया। जब कंपनी को मुग़ल बादशाहों से 'दीवानी' के अधिकार प्राप्त हो गए तो उन्होंने राजस्व की वसूली के लिए अपने अलग अधिकारी नियुक्त किए। 1772 में वारेन हेस्टिंग्स ने राजस्व वसूली तथा न्याय कार्य दोनों के लिए कलेक्टर के पद का सृजन किया। कालांतर में इस पद को अधिकाधिक शक्तियाँ प्राप्त हो गईं तथा जिला कलेक्टर भारत में ब्रिटिश शासन की आँख और कान का काम करने लगा। 1947 में स्वतंत्रता

प्राप्ति के पश्चात् भारत को केंद्रीय और राज्य सरकारों ने विकास के कार्यक्रम प्रारंभ किए। फलस्वरूप जिला कलेक्टर के कार्यों में अतिशय वृद्धि हो गई।

जिला स्तर पर ही शासन की नीतियों का व्यवहारिक स्वरूप प्रदान किया जाता तथा स्थानीय जनता की समस्याओं का अध्ययन कर उन्हें राज्य सरकार तक पहुँचाया जाता है। यह कहना ठीक ही होगा कि जिला, प्रशासन की एक ऐसी इकाई है जिसका संपर्क प्रत्येक नागरिक से होता है। सचिवालय से परे राज्य सरकार के अधिकांश विभागों के क्षेत्रीय कार्यालय जिले में पाए जाते हैं। कुछ मामलों में तो केंद्रीय सरकार के क्षेत्रीय कार्यालय भी जिले में विद्यमान हैं। इन सभी विभागों की गतिविधियाँ मिलकर जिला प्रशासन का स्वरूप निर्मित करती हैं। संक्षेप में, जिला प्रशासन के विभिन्न कार्य निम्नानुसार है :

1. नियामक कार्य जैसे, शांति एवं व्यवस्था स्थापित करना, अपराधों पर नियंत्रण करना, भूमि प्रशासन, जिसमें राजस्व का निर्धारण, उसकी वसूली एवं अन्य बकाया राशि आती है, खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति का नियंत्रण, विनियमन एवं वितरण।
2. जिला प्रशासन कुछ विकास कार्य भी करता है, जिसमें कृषि उत्पादन, सहकारिता, पशु-पालन, मत्स्य-उत्पादन तथा कल्याणकारी कार्य जैसे, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक कल्याण।
3. जिला प्रशासन संसद, राज्य विधान मंडल तथा स्थानीय संस्थाओं (ग्रामीण एवं नगरीय, दोनों) के निर्वाचनों की व्यवस्था करता है।
4. यह आपात सेवाओं की व्यवस्था करता तथा बाढ़ एवं सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाओं का सामना करता है।
5. शासन के प्रमुख प्रतिनिधि की हैसियत से कलेक्टर को कई कार्य करने पड़ते हैं, जैसे : हथियारों के लायसेंस देना, उनका नवीनीकरण करना, उनका निलंबन करना तथा उन्हें रद्द करना, छोटी बचत योजनाओं का प्रचार करना, प्रचार तथा लोक संपर्क कार्य करना तथा प्रोटोकोल कर्त्तव्यों को निर्वाह करना।

भारतीय प्रशासन के इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर पता चलता है कि इसके विकास के प्रारंभिक चरण में जिला स्तर पर केवल एक अधिकारी, जिलाधिकारी, शासन के सभी कार्यों को संपादित करता था। कालांतर में स्थानीय स्वशासी संस्थाएँ तथा प्राविधिक विभागों की स्थापना की गई। परिणाम स्वरूप आदेश की एकता का स्थान आदेश की अनेकता ने ले लिया। इस प्रकार जिला एक प्रकार से उप राजधानी बन गया है, जहाँ पर विभिन्न विभागों के मुख्य कार्यालय स्थित हैं। इन विभागों की अध्यक्षता जिला स्तर के अधिकारी करते हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इसके कारण जिला कलेक्टर की भूमिका में परिवर्तन हो गया है।

### *जिला प्रशासन में कलेक्टर की भूमिका*

भारतीय प्रशासकीय व्यवस्था में जिला प्रशासन के प्रमुख की हैसियत से कलेक्टर को अनुपम स्थान प्राप्त है। स्वतंत्रता से पूर्व वह भारतीय सिविल सेवा का सदस्य होता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उसे भारतीय प्रशासकीय सेवा द्वारा नियुक्त किया जाता है। कभी-कभी वह राज्य सिविल सेवा से पदोन्नत होकर इस पद को प्राप्त करता है। उसे विभिन्न प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं, जिनका सार इस प्रकार है :

*1. कलेक्टर के रूप में :* जिला कलेक्टर जिले के राजस्व विभाग का प्रमुख होता है। वह भू-राजस्व तथा शासन के बकाया धन की वसूली के लिए उत्तरदायी होता है। राजस्व विभाग के जिला स्तर के सभी अधिकारी जैसे, राजस्व सहायक, तहसीलदार, नायब तहसीलदार, कानूनगो, लंबरदार और पटवारी आदि उसी के निर्देशन, अधीक्षण तथा नियंत्रण में कार्य करते हैं तथा वह तकाबी कर्ज देता तथा उसे वापस वसूल करता है। वह वसूल की हानि का निर्धारण करता तथा बाढ़ और सूखे के समय सहायता संबंधी संस्तुति करता है। वह शासकीय संपत्ति का मुख्य प्रबंधक होता है।

*2. जिला मजिस्ट्रेट के रूप में :* पहले वह प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट (न्यायाधीश) के रूप में कार्य करता था किंतु अब कार्यपालिका से न्यायपालिका के पृथक हो जाने के उपरांत उसकी स्थिति में परिवर्तन हो गया है। अब जिला मजिस्ट्रेट न्यायिक कार्य नहीं करता, इसे अब अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट अथवा न्यायिक अधिकारी संपन्न करता है। जिला मजिस्ट्रेट अब केवल जिले के आपराधिक प्रशासन की सामान्य निगरानी रखता है। वह जिले में शासन और व्यवस्था के प्रबंध के लिए उत्तरदायी है। इस विषय में उसकी सहायता पुलिस अधीक्षक करता है। जिला मजिस्ट्रेट जिले की जेलों को भी नियंत्रित करता है तथा समय-समय पर उनका निरीक्षण भी करता है। वह जिले के अपराधों को रोकने संबंधी विधियों के उचित कार्यान्वयन के लिए भी उत्तरदायी है। हथियारों, विस्फोटकों तथा पेट्रोल पदार्थों के लायसेंस भी प्रदान करता है।

*3. जिला प्रशासकीय अधिकारी के रूप में :* जिला प्रशासकीय अधिकारी के रूप में वह राज्य सरकार का प्रमुख प्रतिनिधि होता है। वह जिले में सरकार के सामान्य हितों की देख-रेख करता है। वह सरकार के जिला स्तरीय अन्य कार्यालयों के बीच समन्वय स्थापित करता है। वह अपने अधीनस्थ तहसीलदार, नायब तहसीलदार तथा अन्य गजेटेड अधिकारियों की पदासीनता, स्थानांतरण तथा छुट्टी आदि की भी देख-रेख करता है। जिले का कोषागार उसी के अधीन रहता है। वह जिले का प्रमुख प्रोटोकोल अधिकारी होता है। वह जिले का वार्षिक प्रशासकीय प्रतिवेदन तैयार करता तथा उसे राज्य सरकार के पास भेजता है। वह यह भी देखता है कि जिले में प्रशासन के विरुद्ध जनता की जो शिकायतें हैं उनका समुचित एवं प्रभावशाली समाधान हो।

*4. जिले के विकास अधिकारी के रूप में :* स्वतंत्रता से पूर्व जिला कलेक्टर विकास का कोई कार्य नहीं करता था किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यह उसका एक प्रमुख कार्य हो गया है। इस क्षेत्र में सामुदायिक योजनाओं और पंचवर्षीय योजनाओं ने उसके कार्य में अत्यधिक वृद्धि की। पंचायतीराज व्यवस्था के आरंभ होने के उपरांत विकास कार्य जनता के प्रतिनिधियों को सौंप दिए गए हैं किंतु जिलाधिकारी जिला परिषद् का एक महत्त्वपूर्ण सदस्य है, जिसे जिला विकास योजना से संबद्ध अधिकार और वित्त देने की व्यवस्था सौंपी गई है।

### जिला योजना

जिला कलेक्टर एक मुख्य समन्वयक है, जो जिले की योजनाएँ तैयार करवाता है। कुछ राज्यों में जिला योजना एवं विकास परिषदें/बोर्ड स्थापित किए गए हैं जिनकी अध्यक्षता जिला कलेक्टर या जिले का कोई मंत्री करता है। कुछ राज्यों में इन परिषदों/बोर्ड को योजनाएँ बनाने के अधिकार दिए

गए हैं जबकि कुछ अन्य राज्यों में उनका कार्य केवल परामर्श देना है।

यद्यपि कुछ राज्यों में जिला योजना परिषदें/ बोर्ड स्थापित किए गए हैं तथापि जिला स्तर का योजना कार्य, राज्य की योजना की एक इकाई के रूप में ही प्रचलित है। जिला स्तर पर योजना से संबंधित संस्थाएँ अत्यंत दुर्बल हैं। तृणमूल (grassroot) योजना ने अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं किया है।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि जिला प्रशासन के मूल उद्देश्य में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ है। समस्त राज्यों में नए उत्तरदायित्वों के वहन के लिए इन्हें एक नया स्वरूप प्रदान किया जा रहा है। क्षेत्रीय प्रशासन की एक व्यवहारिक इकाई के रूप में समय की कसौटी पर यह खरा उतरा है और हम आशा करते हैं कि भविष्य में भी यह उसी स्थिति को कायम रखेगा।

## अभ्यास

1. केंद्रीय सचिवालय क्या कार्य करता है?
2. केबिनेट सचिवालय क्या कार्य करता है?
3. विधि/संविधान सम्मत तीन संस्थाओं के नाम बताइए।
4. संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्य की नियुक्ति कैसे की जाती है? संघीय लोक सेवा आयोग की सदस्यता के लिए आवश्यक दो योग्यताओं का उल्लेख कीजिए।
5. राज्य के मुख्य सचिव की भूमिका और उसके कार्यों पर प्रकाश डालिए?
6. राज्य के लोक सेवा आयोग के संगठन और कार्यों का विवरण दीजिए।
7. जिला प्रशासन क्या कार्य करता है?
8. कलेक्टर के रूप में जिलाधिकारी की भूमिका की विवेचना कीजिए।
9. 'जिले का मुख्य कार्यालय राज्य की एक उपराजधानी सा लगता है, इस कथन की विवेचना कीजिए।
10. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।
    - क. भारत का निर्वाचन आयोग।
    - ख. भारत का नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक।
    - ग. भारत का महान्यायवादी।
    - घ. राज्य का वित्त आयोग।
    - ङ. महाधिवक्ता।

# शब्दावली

**अधिकार पृच्छा (Quo Warranto)** : यदि कोई व्यक्ति अवैध रूप से किसी सार्वजनिक पद पर आसीन है तो न्यायालय उससे पूछता है कि वह किस विधि के अनुसार उस पद को धारण किए हुए है। यदि न्यायालय इस निर्णय पर पहुँचता है कि वह व्यक्ति अनाधिकार रूप से उस पद पर आसीन है तो न्यायालय उसे उस पद को छोड़ने का आदेश दे सकता है।

**अनन्य (Exclusive)** : एकाधिकार।

**अनानुपात (Disproportional)** : जहाँ अनुपात का अभाव हो।

**अनुभाग (Section)** : प्रशासन की एक इकाई।

**अनुरूपता का सिद्धांत (Principle of harmonious construsion)** : जहाँ दो परस्पर विरोधी प्रावधानों की व्याख्या इस ढंग से की जाए कि दोनों के बीच संगति स्थापित हो सके, ऐसी व्याख्या को अनुरूपता के सिद्धांत के नाम से संबोधित किया जाता है।

**अनुसूचित जातियाँ/जन जातियाँ (Scheduled Castes/Tribes)** : 1935 के भारतीय शासन अधिनियम में उन जातियों/ जन जातियों के नाम एक अनुसूची में दिए गए थे जिन्हें विशेष सुविधाओं की आवश्यकता थी। बाद में इन जातियों/जन जातियों को अनुसूचित जातियों/ जन जातियों के नाम से पुकारा जाने लगा।

**अपराध उद्दीपन (Incitement of an offence)** : जहाँ किसी को अपराध करने के लिए उत्तेजित किया जाए।

**अभिकरण (Agency)** : एक संगठन अथवा संस्था जो निर्धारित कार्य संपादित करती है।

**अभियंता (Engineer)** : इंजीनियर।

**अभियोजन (Litigation)** : मुकदमा।

**अभिलेख न्यायालय (Court of Records)** : एक ऐसा न्यायालय जिसके निर्णय अधिकारिक तौर पर प्रकाशित किए जाते हैं तथा उन्हें दृष्टांत स्वरूप मानकर उनके आधार पर निर्णय दिए जाते हैं।

**अधिनियम (Act)** : जब कोई विधेयक संसद/विधान मंडल के दोनों सदनों द्वारा पारित हो जाता है तथा उस पर राष्ट्रपति/राज्यपाल के हस्ताक्षर हो जाते हैं तो वह अधिनियम अर्थात् विधि बन जाता है।

**अधिपति सत्ता (Paramountcy)** : स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश सम्राट की सर्वोच्च सत्ता जिसके आधार पर देशी रियासतों से ब्रिटेन के संबंध निर्धारित होते थे।

**अधिरोपण (Imposition)** : जब सरकार कोई नया कर लगाती है तो इसे कर का अधिरोपण कहा जाता है।

**अधीक्षक (Superintendent)** : वह अधिकारी जो सचिव के अधीन कार्य करता तथा उसकी सहायता करता है।

**अवर सचिव (Under Secretary)** : वह अधिकारी जो सचिव के अधीन कार्य करता तथा उसकी सहयता करता है।

**उत्प्रेषण का लेख (Certiorari)** : इसमें उच्चतम न्यायालय किसी कनिष्ठ न्यायालय, अधिकरण या अधिकारी को यह आदेश दे सकता है कि जो प्रकरण उसके विचाराधीन है उससे संबंधित कार्यवाही के कागजात उच्चतम न्यायालय को भेजें। न्यायालय उन

कागजातों की जाँच पड़ताल करता है और यदि आवश्यक हो तो उस प्रकरण को समाप्त कर देता है।

**उत्सादन (Abolition)** : जब सरकार किसी कर को समाप्त कर देती है तो इसे कर का उत्सादन कहा जाता है।

**उन्मुक्ति (Immunity)** जब किसी अधिकारी को उसके द्वारा किए गए अपराधों से मुक्ति दे दी जाती है तो इस क्रिया को उन्मुक्ति कहा जाता है।

**उपक्रमों (Undertakings)** : उद्यमों।

**उपनिवेश (Dominion)** : संयुक्त राज्य को छोड़, (ब्रिटिश) कामन वेल्थ का कोई स्व-शासी राष्ट्र जो ब्रिटिश राजा को अपना राज्य प्रमुख मानता हो।

**कार्य-स्थगन प्रस्ताव (Adjournment motion)** : एक ऐसा प्रस्ताव जो विधान मंडल/ संसद के निर्धारित कार्यक्रम को स्थगित करने तथा किसी दूसरे प्रश्न पर विचार करने को प्राथमिकता देने की माँग करता है।

**खिलाफत का सवाल (The question relating to Khilafat)** : टर्की के शासक अर्थात् खलीफा, जिसे मुसलमान अपना धर्म गुरू मानते हैं, से संबंधित प्रश्न।

**खंड (Block)** : गाँवों का समूह।

**गणराज्य (Republic)** : ऐसा राज्य जिसका प्रमुख जनता द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से एक निश्चित अवधि के लिए निर्वाचित होता है।

**त्रि-स्तरीय (Three tier)** : बलवंत राय मेहता समिति ने तीन स्तरों (ग्राम, खंड तथा जिले) पर पंचायत व्यवस्था स्थापित करने का सुझाव दिया था, जिसे त्रि-स्तरीय पंचायती राज व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है।

**द्वि-राष्ट्र सिद्धांत (Two nation theory)** : जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव पास किया जिसके अनुसार हिंदू और मुसलमान दो समुदाय नहीं, वरन् दो राष्ट्र हैं। इसे ही द्वि-राष्ट्र सिद्धांत के नाम से पुकारा जाता है।

**द्वैध शासन (Dyarchy)** : जहाँ पर दो प्रकार की शासन प्रणालियों (जैसे उत्तरदायी तथा अनउत्तदायी) का सहअस्तित्व हो, ऐसी व्यवस्था को द्वैध शासन के नाम से संबोधित किया जाता है।

**दुर्बल वर्ग (Weaker Sections)** : अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछडे वर्गों के लोग समाज के दुर्बल वर्ग जाने जाते हैं।

**धन विधेयक (Money Bill)** : कोई विधेयक उस समय धन विधेयक के रूप में मान्यता प्राप्त करता है जब: 1. वह किसी कर का अधिरोपण (imposition), उत्सादन (abolition), परिहार (remission), परिवर्तन (alteration) या विनियमन (regulation) करता हो 2. भारत सरकार द्वारा उधार लेने का या कोई प्रत्याभूति (guarantee) देने का विनियमन करता हो, 3. भारत की संचित निधि या आकस्मिकता (contingency) निधि की अभिरक्षा (custody) करता हो, 4. भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग करता हो, 5. भारत की संचित निधि या भारत के लोक लेखा की मद में धन प्राप्त करता हो। यदि कभी यह विवाद उठ खड़ा हो कि कोई विधेयक धन विधेयक है अथवा नहीं तो इस विषय में लोक सभा के अध्यक्ष का निर्णय अंतिम और सर्वमान्य होगा।

**न्यायिक समीक्षा (Judicial Review)** : जब न्यायपालिका को यह अधिकार प्राप्त रहता है कि वह विधायिका के कार्यों की जाँच करे तथा यह पता लगाए कि उसने जो विधि बनाई है वह संविधान के अनुसार है अथवा नहीं तो उसके इस कार्य को न्यायिक समीक्षा के नाम से पुकारा जाता है। इसी

प्रकार जब न्यायपालिका कार्यपालिका के कार्यों की जाँच करती है तथा यह पता लगाती है कि उसके कार्य संविधान/ विधान सम्मत हैं अथवा नहीं तो न्यायपालिका के इस कार्य को भी न्यायिक समीक्षा के नाम से संबोधित किया जाता है।

नामित/मनोनीत (Nominated) : नियुक्त।

नियामक (Regulatory) : व्यवस्थापक।

निलंबन (Suspend) : स्थगित करना।

निवारक निरोध अधिनियम (Preventive Detention Act) : ऐसी विधि जो किसी व्यक्ति को, अपराध करने के लिए नहीं, वरन् अपराध करने से रोकने के लिए गिरफ्तार करने की व्यवस्था करती है।

निषेध (Prohibition) : जब कोई न्यायालय अथवा अधिकरण किसी प्रकरण पर विचार कर रहा हो तो इस लेख के द्वारा उच्चतम न्यायालय उसे आदेश देता है कि वह उस प्रकरण पर विचार रोक दे।

प्रच्छन्नता (Annonymity) : परदे की ओट से।

पथ-कर (Tolls) : सड़क पार करने के लिए लगाया गया कर।

पदेन (Ex-Officio) : पद धारण करने के कारण। उदाहरणार्थ, भारत का उपराष्ट्रपति पदेन राज्य सभा का सभापति होता है, इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक कोई व्यक्ति उपराष्ट्रपति का पद धारण करता रहेगा तब तक ही वह राज्य सभा का सभापति बना रहेगा।

परमादेश (Mandamus) :- जब कभी कोई शासक, न्यायालय, निगम अथवा सार्वजनिक अधिकारी अपने लिए निर्धारित कर्त्तव्य का पालन नहीं करता है तो उच्चतम न्यायालय उसे अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिए आदेश देता है इसी प्रकार, जब वह कोई ऐसा कार्य करता है जो उसके अधिकार क्षेत्र से बाहर है तब न्यायालय उसे उस कार्य को करने पर रोक लगा सकता है।

परिहार (Remission) : इसका अभिप्राय दंड के स्वरूप में परिवर्तन किए बिना उसकी मात्रा में परिवर्तन करना है।

पूर्ण वयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) : जहाँ प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को : जाति, धर्म, भाषा, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव किए बिना, समान रूप से मताधिकार प्राप्त हो।

पंथ निरपेक्ष (Secular) : जहाँ धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाता तथा सभी धर्मों को समान रूप से देखा जाता है।

प्रजाति (Race) : मानव जाति का वह समूह जिसके कुछ विशिष्ट लक्षण होते हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होते हैं तथा जिसके कारण वह समूह अन्य समूहों से भिन्न होता है।

पृथक/संयुक्त निर्वाचक मंडल (Separate/Joint Electorate) : जब कभी मतदाताओं को संप्रदाय के आधार पर समूहबद्ध किया जाता है तथा उन्हें अपने संप्रदाय के अभ्यर्थियों को ही मत देने का अधिकार प्राप्त रहता है तो ऐसे समूह को पृथक निर्वाचक मंडल के नाम से संबोधित किया जाता है। जब सभी मतदाताओं को बिना किसी सांप्रदायिक भेदभाव के मत देने का अधिकार प्राप्त होता है तो उसे संयुक्त निर्वाचक मंडल के नाम से जाना जाता है।

प्रदत्त विधान (Delegated Legislation) : जब विधायिका किसी विधि का निर्माण करते समय नियम, विनियम तथा उपनियम बनाने के लिए कार्यपालिका को अधिकृत कर देती है और कार्यपालिका यह कार्य करती है तो कार्यपालिका के इस कार्य को प्रदत्त विधान के नाम से संबोधित किया जाता है।

**प्रविलंबन (Reprieves)** : विधि द्वारा निर्धारित दंड को अस्थायी रूप से टालना।

**प्रवर समिति (Select Committee)** : विधायिका की एक समिति जिसमें विधायिका के वे सदस्य रखे जाते हैं जो उस विधेयक से संबंधित विषय में विशेष रुचि रखते हैं तथा जो उस विधेयक की गइराई से जाँच पड़ताल कर उसमें उपयुक्त संशोधनों के सुझाव रखते हैं।

**प्राक्कलन समिति (Estimates Committee)** : संसद विधायिका की वह समिति जो अनुमानित आय और व्यय का परीक्षण करती तथा बचत संबंधी उपयुक्त सुझाव देती है।

**बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus)** : जब कभी किसी व्यक्ति को विधि विरुद्ध या विधि की अनुमति के बिना बंदी बनाकर रखा जाता है तो, जिसने उस व्यक्ति को बंदी बनाकर रखा है, उस व्यक्ति या अधिकारी को न्यायालय यह आदेश जारी करता है कि वह बंदी को न्यायालय के सम्मुख प्रत्यक्ष (प्रस्तुत) करे तथा उन कारणों को बताए जिनके आधार पर उसको बंदी बनाया गया है। यदि न्यायालय जाँच करने के पश्चात् इस निर्णय पर पहुँचता है कि उस बंदी को विधि विरुद्ध बंद किया गया है तो न्यायालय उसे मुक्त करने का आदेश देता है।

**महानगर क्षेत्र (Metropolitan Area)** : दस लाख या उससे अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्र को, जिसमें एक या अधिक जिले समाविष्ट हों तथा जो दो या दो से अधिक नगरीय संस्थाओं अथवा पंचायतों से मिलकर बनता हो, राज्य का राज्यपाल एक महानगर क्षेत्र घोषित कर सकता है।

**मेग्ना कार्टा (Magna Carta)** : यह स्वतंत्रता का अधिकार-पत्र माना जाता है। सन् 1215 में इंग्लैंड के राजा जॉन को उसके सामंतों तथा धर्माधिकारियों ने अपनी कुछ माँगों को मनवाने के लिए बाध्य कर दिया यद्यपि उस समय इसका संबंध सामान्य नागरिकों के अधिकार से नहीं था तथापि कालांतर में इसने अंग्रजों के अधिकार पत्र का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इसके अनुसार किसी भी स्वतंत्र मनुष्य को देश की विधि की अनुमति के बिना न तो गिफ्तार किया जा सकता, न जेल में रखा जा सकता, न विस्थापित किया जा सकता, न अपराधी घोषित किया जा सकता, न देश से निर्वासित किया जा सकता और न किसी भी प्रकार से तंग किया जा सकता है।

**युक्ति-युक्त प्रतिबंध (Restrictions)** : संविधान के अनुच्छेद 19 के अनुसार नागरिकों को जो 6 स्वतंत्रताएँ प्रदान की गई उन पर राज्य युक्ति-युक्त प्रतिबंध लगा सकता है। कोई प्रतिबंध युक्ति-युक्त है अथवा नहीं इसका निर्णय अंततोगत्वा न्यायपालिका करती है।

**राष्ट्रीय एकीकरण (National Integration)** : विभिन्न समूहों से संबद्ध व्यक्तियों को समानता के आधार पर राष्ट्र का एक अविच्छिन्न अंग मानना।

**लघुकरण (Commutation)** : इसका अभिप्राय दंड के स्वरूप में परिवर्तन कर उसे घटाना है, जैसे मृत्युदंड को आजीवन कारावास के रूप में परिवर्तित कर दिया जाए।

**व्यक्तिगत निर्णय (Individual Judgement)** : 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के अंतर्गत गवर्नरों तथा गवर्नर जनरल को कुछ विषयों में अपनी मंत्रिपरिषदों से सलाह लेना आवश्यक था किंतु उस सलाह को मानना उनके लिए अनिवार्य नहीं था। वे उन विषयों में जो निर्णय लेते थे उसे व्यक्तिगत निर्णय के नाम से संबोधित किया जाता है।

**विकेंद्रित एकात्मक शासन (Decentralised Unitary Form of Government)** : जब वैधानिक रूप से सत्ता केंद्रीय सरकार में केंद्रित रहती है किंतु प्रशासकीय सुविधा की दृष्टि से प्रांतीय सरकारों की रचना कर उन्हें कुछ अधिकार प्रदान कर दिए जाते हैं किंतु केंद्रीय सरकार जब चाहे उन्हें वापस ले सकती है तो ऐसी शासन व्यवस्था को विकेंद्रित एकात्मक शासन के नाम से पुकारा जाता है।

**विनियोग विधेयक (Appropriation Bill)** : एक ऐसा विधेयक जो शासन के विभिन्न विभागों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संचित कोष से रकम निकालने की व्यवस्था करता है, जिसकी स्वीकृति विधान मंडल ने अनुदान माँगों के रूप में पहले ही दे दी।

**सकारात्मक कार्य (Affirmative Action)** : समाज के दुर्बल वर्गों के उत्थान के लिए किए गए ठोस कार्य, जैसे विधान मंडलों, सरकारी नौकरियों में उनके लिए आरक्षण की व्यवस्था।

**समरसता (Harmony)** : अनुरूपता।

**समवर्ती सूची (Concurrent List)** : वह सूची जिसमें संसद तथा विधान मंडल दोनों को विधि बनाने का अधिकार प्राप्त रहता है।

**मिश्रित संस्कृति (Composite Culture)** : जहाँ दो या दो से अधिक संस्कृतियों का समन्वय हो।

**सुनमनीय/दुष्नमनीय संविधान (Flexible/Rigid Constitution)** : जब किसी संविधान में साधारण प्रक्रिया तथा साधारण बहुमत से संशोधन संभव हो तो उसे सुनमनीय संविधान के नाम से संबोधित किया जाता है। जब संविधान में संशोधन के लिए विशेष प्रक्रिया तथा विशेष बहुमत की आवश्यकता होती है तो ऐसे संविधान को दुष्नमनीय संविधान कहा जाता है।

**हस्तांतरित/सुरक्षित विषय (Transferred/Reserved Subjects)** : 1919 के भारतीय शासन अधिनियम के अनुसार जिन विषयों में प्रांतीय सरकारों को शासन का अधिकार प्राप्त था उन्हें दो भागों में विभक्त किया गया था। कुछ विषयों का शासन उत्तरदायी मंत्रियों को सौंप दिया गया, उन्हें हस्तांतरित विषयों की संज्ञा दी गई। कुछ विषयों का शासन गवर्नरों द्वारा नियुक्त परामर्शदाताओं को सौंपा गया जो विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे, ऐसे विषयों को सुरक्षित विषयों के नाम से संबोधित किया जाता है।